मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 138 • वर्ष 15, अंक 2 • मई 2025 • दस रुपये • (विशेष अंक) 20 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

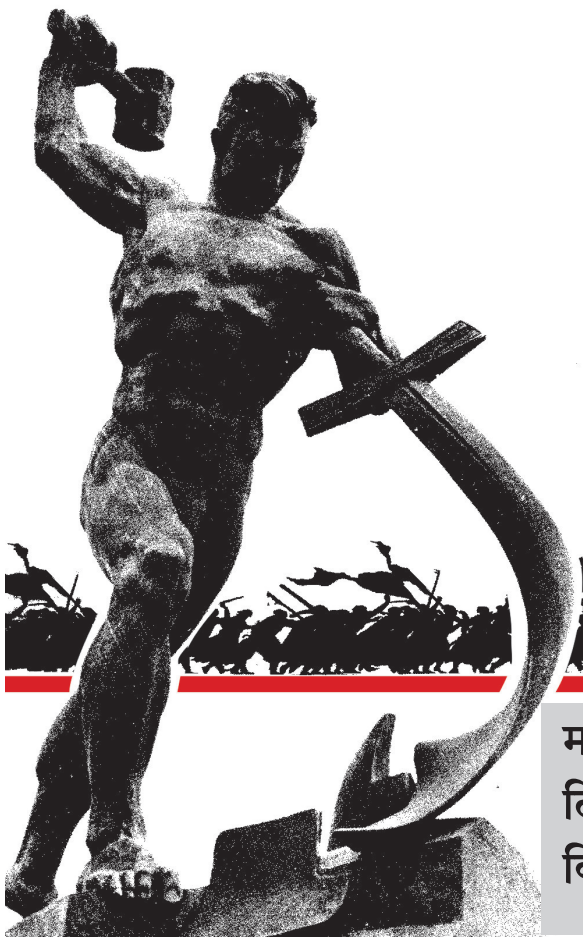

मज़दूर साथियो, मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को जानो 7

सैलानियों और आम नागरिकों की सुरक्षा में चूक के लिए कौन है ज़िम्मेदार ? 11

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 16

मई दिवस 2025

रस्म-अदायगी से आगे बढ़कर मज़दूर वर्ग के अधिकारों पर असली जुझारू लड़ाई के लिए

जागो! गोलबन्द हो! संगठित हो!

सम्पादकीय अग्रलेख

आज से 139 साल पहले शिकागो में अमेरिकी मज़दूरों ने एक लड़ाई की शुरुआत की थी। लड़ाई का मक़सद था एक इन्सानी ज़िन्दगी का हक़। उसका नारा था : 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम, आठ घण्टे मनोरंजन'। उस दौर में पूरी दुनिया में ही मज़दूरों से 12-14 और कहीं-कहीं 16 घण्टे तक काम करवाया जाना आम था। कई जगहों पर साप्ताहिक छुट्टी भी नहीं मिलती थी। ओवरटाइम करना मजबूरी था। ऐसे दौर में, 1856 में ऑस्ट्रेलिया के निर्माण मज़दूरों के सफल संघर्ष से प्रेरणा लेते हुए आठ घण्टे के कार्यदिवस की लड़ाई को शिकागो के मज़दूरों ने एक नये स्तर पर पहुँचाया। इसी आन्दोलन के दौरान हे-मार्केट मज़दूर सभा में बम काण्ड के बाद झूठे आरोप लगाकर कई मज़दूर नेताओं को फाँसी दे दी गयी। कुछ वर्षों बाद अमेरिकी न्यायपालिका और पूँजीवादी व्यवस्था को मानना पड़ा था कि ये फाँसियाँ नाजायज़ थीं और पूँजीपतियों को तुष्ट करने के लिए दी गयी थीं। 11 नवम्बर 1887 को पार्सन्स, एंजेल, स्पाइस व फ़िशर को फाँसी दे दी गयी थी। उसके एक दिन पहले ही लिंग्ग नामक एक अन्य फाँसी की सज़ा पाये मज़दूर ने आत्महत्या कर ली थी। 1893 में एक मज़दूर-समर्थक डेमोक्रैट जज ऑल्टगेल्ड ने बचे हुए सज़ायाफ्ता मज़दूर कैदियों को दण्डमुक्त कर दिया था और 1887 में दी गयी फाँसी की सज़ा को अन्यायपूर्ण क़रार दिया था।

आज पूरी दुनिया में यह तथ्य स्वीकार किया जाता है कि इन मज़दूर नेताओं को केवल उनके क्रान्तिकारी विचारों और मज़दूर वर्ग को उसकी जायज़ माँगों के लिए संगठित करने के लिए पूँजीपति वर्ग की शह पर सज़ा दी गयी थी। पूँजीपति वर्ग को यह लगता था कि इसके ज़रिये वे मज़दूरों के आठ घण्टे के कार्यदिवस व अन्य माँगों के लिए उभरते आन्दोलन को कुचल सकेंगे। लेकिन हुआ इसका उल्टा। फाँसी पाने वाले एक मज़दूर नेता ऑगस्ट स्पाइस ने फाँसी की सज़ा सुनाये जाने के बाद कठघरे से ही पूँजीपति वर्ग को चुनौती देते हुए एलान किया था : "एक दिन हमारी ख़ामोशी उन आवाज़ों से कहीं ज़्यादा ताक़तवर साबित होगी, जिनका आज तुम गला घोंट रहे हो।" स्पाइस के इस एलान को इतिहास ने सही साबित किया।

उस लड़ाई और उसमें बहादुर मज़दूरों की क़ुर्बानियों की बदौलत आने वाले कुछ दशकों के दौरान पूरी दुनिया में मज़दूरों ने अथक संघर्ष और अद्वितीय साहस के साथ संघर्ष कर आठ घण्टे के कार्यदिवस को क़ानूनी तौर पर हासिल किया। 1937 आते-आते अमेरिका में आठ घण्टे का कार्यदिवस लगभग सभी उद्योगों में लागू हो चुका था। पूरी दुनिया में भी अधिकांश देशों में यह आने वाले कुछ ही वर्षों में लागू हो गया।

हमारे देश में भी 1920 का दशक मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के उभार का दौर था और 1920 और 1930 के दशक में ही मज़दूर आन्दोलन के दबाव के कारण अंग्रेज़ी सरकार को काम के घण्टों को वास्तव में विनियमित करने की शुरुआत करनी पड़ी थी और काग़ज़ी तौर पर आठ घण्टे के कार्यदिवस की भी बातें होने लगीं थीं। इन संघर्षों का ही नतीजा था कि 1948 में बने कारख़ाना अधिनियम ने

(पेज 9 पर जारी)

केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने एक बार फिर से की ग़द्दारी!

20 मई की एकदिवसीय देशव्यापी हड़ताल स्थगित!

• भारत

आगामी 20 मई को केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने देशव्यापी एकदिवसीय हड़ताल की घोषणा की थी। फिर अचानक से 15 मई को हड़ताल स्थगित करने की घोषणा की गयी। इसका कारण बताया गया कि अभी सरकार और मालिकों को हड़ताल की सूचना नहीं दी गयी है। इससे ही इनके चरित्र को साफ़ समझा जा सकता है। अब ये ग़द्दार ट्रेड यूनियनें सिर्फ़ इसलिए हड़ताल वापस ले रहीं हैं, ताकि मालिकों को सूचना दी जा सके। यह तो पूरी तरह मालिकों और पूँजीपतियों की गोद में ही बैठना हुआ। क्या अब मज़दूर हड़ताल करने के लिए अपने मालिकों से अनुमति लेंगे? क्या इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने हड़ताल वापस लेने से पहले मज़दूरों की राय लेना ज़रूरी नहीं समझा? यह केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की मालिकों के प्रति भक्ति को ही दर्शाता है। असल बात यह है कि इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की स्थिति यह है कि अब एक दिन की हड़ताल की रस्मी क़वायद भी ठीक से नहीं कर पा रहे हैं। धीरे-धीरे संगठित मज़दूरों के बीच से भी इनका आधार ख़त्म होता जा रहा है। बता दें कि किसी भी औद्योगिक क्षेत्र में 20 मई की हड़ताल को लेकर कोई हलचल नहीं थी, अधिकतम मज़दूरों को इसके बारे में जानकारी ही नहीं थी। इसलिए अपनी साख़ बचाने के लिए भी मजबूरन इन्हें हड़ताल वापस लेना पड़ा।

मज़दूरों के हड़ताल के हथियार को धारहीन बनाती केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें!

अभी तो केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने हड़ताल वापस ले लिया है। पर अगर हड़ताल हो भी जाती तो क्या हम सिर्फ़ इस बात से सन्तोष कर लेंते कि एकदिवसीय हड़ताल में देश के करोड़ों मज़दूरों ने भागीदारी की और अपनी ताक़त दिखायी? क्या केवल एक दिन से मज़दूरों द्वारा अपना गुस्सा निकाल लेने से मज़दूर वर्ग और मालिक वर्ग के बीच संघर्ष में कोई निर्णायक अन्तर आयेगा? मालिकों की ताक़त के समक्ष मज़दूरों की ताक़त उनकी एकता ही होती है और एकता के दम पर मालिकों के मुनाफ़े पर चोट करने का काम हड़ताल ही करती है। लेकिन यह हड़ताल भी तभी कारगर होगी जब मालिकों और उनकी प्रतिनिधि मोदी सरकार को झुकाकर मज़दूरों की माँगों को मनवाया जा सके और यह काम यह एक दिनी रस्मी हड़ताल हमें करने नहीं देती हैं।

मालिकों के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए हड़ताल हमारा ब्रह्मास्त्र है। लेकिन हथियार अगर भोथरा यानी धारहीन हो जाये और उससे शत्रु को चोट न पहुँचे तो यह बेअसर होगा। आज हड़ताल जैसे हथियार को धारहीन करने का काम केन्द्रीय ट्रेड यूनियन कर रही हैं। कैसे? देश भर में इस हड़ताल का आह्वान सीटू, एटक, एच.एम.एस सरीखी ट्रेड यूनियनों ने किया था। इन ट्रेड यूनियनों का मक़सद मज़दूरों के बीच गुस्से को केवल एक दिन की रस्मी हड़ताल के ज़रिये शान्त करना होता है, ताकि मज़दूरों का यह गुस्सा फूटकर मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था को ही न चकनाचूर

(पेज 19 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

बिगुल के लिए एक कविता

हम तो बस इसी बहाने निकले हैं
धरती की गोद में बैठकर आसमाँ को झुकाने निकले हैं
ज़ुल्मतों के दौर से, इन्साँ को बचाने निकले हैं
विज्ञान की ज्वाला जलाकर, अँधेरा मिटाने निकले हैं
हम इन्सान है, इन्सान बनाने निकले हैं
हम अन्धविश्वास को दहलाने निकले हैं
हम ग़रीबों की भूख मिटाने निकले हैं
हम किसी धर्म-मजहब के नहीं
हम तो फासीवाद,धर्म-जात की नफ़रतों को मिटाने निकले हैं
हम इन्सानों को जगाने निकले हैं
हम तो लोगों को मिलाने निकले हैं
शहीदों के देश में, ये अहसास दिलाने निकले हैं
किस तरह बलिदानों से स्वतन्त्रता दिलाई
ये फिर बतलाने निकले हैं
भगतसिंह, शहीद सराभा को सुनाने निकले हैं
हम इन्सानों को जगाने निकले हैं
हम जवानों की जवानी जगाने निकले हैं
ना मरे जवानी नशे की महामारी से बचाने निकले हैं
हम विज्ञान की ज्वाला से पाखण्ड को मिटाने निकले हैं
क्यूँ मुज़फ़्फ़रनगर जला, क्यूँ गुजरात सुलगा
क्यूँ बच्चे मारे पेट में, क्यूँ नारी का अपमान हुआ
हम वो राज़ बताने निकले हैं
हम लोगों की आँखों से अन्धकार मिटाने निकले हैं
अब अगर तू ना समझा जेवी,
आगे क्या अंजाम होगा मेरे देश का
हम वो अनुमान लगाने निकले हैं
हम इन्सानों को जगाने निकले हैं
हम इन्सान हैं, इन्सान बनाने निकले हैं

– जगविन्द्र सिंह, बलराज नगर, कैथल

मेरे मज़दूर भाईयो, मैं निर्माण क्षेत्र से जुड़ा मज़दूर हूँ। हमारा काम गाड़ियों से रेती, बजरी, सीमेण्ट आदि उतारना और लादना होता है। काम के दौरान न तो किसी भी प्रकार का सुरक्षा इन्तज़ाम होता और रोज़-रोज़ काम का मिलना भी निश्चित नहीं होता। बहुत बार खाली हाथ भी घर लौटना पड़ जाता है। बिगुल अखबार पढ़ने के बाद मुझे पता चला कि हम दुनिया भर के मज़दूरों को क्यों संगठित होना चाहिए क्योंकि एकजुट होकर ही हम मालिक वर्ग को अपनी माँगों पर झुका सकते हैं। हम नरवाना के मज़दूरों ने कुछ महीने पहले हड़ताल की थी और अपनी कई माँगों को मनवाने में सफल रहे थे।

इसी समय हमनें निर्माण मज़दूर यूनियन का भी गठन किया था। हम मज़दूर बिगुल के लेखों को चाव से पढ़ते हैं, साथ ही इससे सीख भी लेते हैं तथा अपने अन्य मज़दूर भाइयों को भी इसके बारे में बताते हैं। साथियो, मैं आप सबसे यही कहना चाहूँगा कि हमें एकजुट होना होगा और मज़दूर राज क़ायम करने के लिए लड़ना होगा तभी हम अपने दुखों से छुटकारा पा सकते हैं।

– इन्दर, निर्माण मज़दूर, नरवाना, हरियाणा।

मज़दूर बिगुल डाक से न पहुँचने की शिकायतों के बारे में

हमें 'मज़दूर बिगुल' के कई नियमित पाठकों की ओर से अक्सर ऐसी शिकायतें मिल रही हैं कि अख़बार की प्रति उन्हें मिल ही नहीं रही है या अनियमित मिल रही है। ऐसे साथियों से आग्रह है कि वे एक बार अपने निकटतम डाकघर में लिखित शिकायत दर्ज करायें और उसकी प्रति हमें भी ईमेल या व्हाट्सएप पर भेज दें, ताकि हम जिस डाकघर से अख़बार पोस्ट करते हैं, वहाँ भी शिकायत दर्ज करा सकें।

पिछले काफ़ी समय के अनुभव और डाक विभाग के ही अनेक कर्मचारियों व अधिकारियों से बात करने के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह सरकार जानबूझकर डाक विभाग की जनसेवाओं को नष्ट कर रही है ताकि इसके भी बड़े हिस्से को निजीकरण की ओर धकेला जा सके। भारत जैसे विशालकाय देश में, सीमित संसाधनों और तमाम दबावों के बावजूद लम्बे समय तक काफ़ी ज़िम्मेदारी और विश्वसनीयता के साथ काम करने वाली एक बेहद ज़रूरी जनसेवा को व्यवस्थित ढंग से बरबाद किये जाने के नतीजे हम लगातार देख रहे हैं। एक तरफ़ सेवाओं के दाम बढ़ाये जा रहे हैं, दूसरी ओर नयी भर्तियाँ नहीं करने, ठेकाकरण बढ़ाने और डाकिये सहित तमाम कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाते जाने से भी सेवाएँ प्रभावित हो रही हैं।

'बिगुल' जैसे जनपक्षधर पत्र-पत्रिकाओं और हमारे पाठकों के लिए इससे कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं लेकिन हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि आप तक अख़बार पहुँचता रहे। इसमें हमें आपका भी सहयोग चाहिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

गीडा : मज़दूरों की जान की क़ीमत पर मालिकों के मुनाफ़े के लिए विकसित होता औद्योगिक क्षेत्र

● अम्बरीष

वैसे तो देश के किसी भी कारख़ाने में मज़दूरों की ज़िन्दगी दाँव पर लगी रहती है। लेकिन इधर योगी आदित्यनाथ के "उत्तम प्रदेश" गोरखपुर के औद्योगिक क्षेत्र गीडा (गोरखपुर औद्योगिक विकास प्राधिकरण) ने इस मामले में मिसाल क़ायम कर दी है। गीडा में अप्रैल और मई के महीने में अलग-अलग कारख़ानों में होने वाली दुर्घटनाओं में 6 मज़दूरों की मौत हो गई और कई मज़दूर बुरी तरह से घायल हो गये। घायल होने वाले मज़दूरों में अभी भी कई ज़िन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ रहे हैं। भाजपा का "रामराज्य" मज़दूरों पर बहुत भारी पड़ रहा है।

ग़ौरतलब है कि पिछले डेढ़ महीने में होने वाली दुर्घटनाओं में दो में तो बॉयलर फटने की वजह से भयानक हादसा हुआ। बॉयलर फटने के धमाके की आवाज़ कई किलोमीटर तक सुनाई दी और अगल-बगल के कारख़ानों की दीवारों में दरार तक पड़ गयी। सबसे भयंकर हादसा 23 अप्रैल को गीडा के सेक्टर-13 में स्थित फास्ट फूड व नूडल्स बनाने की फैक्ट्री में बॉयलर फटने से हुआ। धमाके के बाद पूरे कारख़ाने में भयंकर आग लग गई और कारख़ानों की दीवार और टिन शेड तक भरभरा कर गिर गये। कुछ मज़दूर ही गेट फाँदकर बाहर निकल सके। आग इतनी भयंकर थी कि मज़दूर हज़रत बिलाल (उम्र-18 वर्ष) और उमर फारुख़ (उम्र - 38 वर्ष) की 95 प्रतिशत जल जाने की वजह से उसी दिन मौत हो गयी, जबकि बुरी तरह जले दो मज़दूर की इलाज के दौरान मौत हो गयी। 2 मई को गीडा के सेक्टर-23 में स्थित गैलेंट फैक्ट्री में दुर्घटना हुई। बिना किसी सुरक्षा उपकरण के गैलेंट फैक्ट्री की भारी मशीनों को शिफ्ट करने के दौरान मजदूर अखिलेश (उम्र - 32 वर्ष) और भानू प्रकाश पाण्डेय (उम्र - 55 वर्ष) की मशीन में दबकर दर्दनाक मौत हो गई। इनमें अखिलेश फ्लोर मशीन चलाने का काम करता था और भानू मज़दूरों को पानी पिलाने का काम करता था। 4 मई को गीडा के सेक्टर-23 में स्थित शहर के कुख्यात पूँजीपति अशोक जालान की सरिया बनाने वाली अंकुर स्टील कम्पनी में बॉयलर फटने के बाद आग लग गई। जिसमें दो मजदूर भयंकर रूप से जल गये।

इन घटनाओं के बाद प्रशासन कुम्भकरण की नींद से जागा और जाँच प्रक्रिया शुरू की। जाँच के दौरान पता चला कि गत्ता निर्माण की आड़ में अवैध रूप से नूडल्स की फैक्ट्री चल रही थी। सेक्टर-13 और सेक्टर-15 में 50 फैक्ट्री की जाँच की गई, जिसमें से कुछ बन्द मिलीं और कई फैक्ट्रियों के संचालक कोई काग़ज़ात नहीं दिखा सके।

गोरखपुर के गीडा में इस तरह की घटनाएँ आये-दिन होती रहती हैं। दुर्घटना होने के बाद श्रम विभाग जाँच के नाम पर कुछ रुटीनी क़वायद करके, लीपा-पोती करके कुम्भकरणी नींद से अपने जागने की क़ीमत मालिकों से वसूलकर फिर से सो जाता है। मज़दूरों को ना तो उचित मुआवजा और न ही उचित दवा-इलाज मिलता है। मिलता है तो बस अंग-भंग शरीर या फिर मौत। सुरक्षा उपकरणों की कमी, जानबूझकर मानकों का उल्लंघन कर अवैध तरीक़े से चलने वाले कारख़ानों में मज़दूरों को मौत के मुँह में झोंकने के बावजूद योगी सरकार द्वारा न तो मालिकों के घरों पर बुलडोज़र चलता है और न ही मालिकों पर कोई कार्रवाई होती है।

गीडा को पूर्वी उत्तर प्रदेश के औद्योगिक हब के रूप में विकसित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत कुल 13135 एकड़ क्षेत्रफल आता है। जिसे कुल 32 सेक्टर में बाँटा गया है। इनमें 12 औद्योगिक सेक्टर बनाये गये हैं। गीडा में अब तक 1543 एकड़ भूमि विकसित किया जा चुका है जिसमें से 1170.40 एकड़ भूमि आबण्टित की गयी है। इन 12 सेक्टरों में कई सारी छोटी-बड़ी कम्पनियाँ स्थापित हैं, जिनकी संख्या 1050 के आसपास है। जिनमें से मात्र 127 कम्पनियों के पास उत्पादन के सर्टिफिकेट हैं। जबकि लगभग 902 कम्पनियाँ अवैध रूप से संचालित हो रही हैं। इन कम्पनियों में खाद्य सामग्री, कृषि से सम्बन्धित वस्तुओं, पशुओं से सम्बन्धित मालों, प्लास्टिक की वस्तुओं, सरिया, सीमेण्ट और यहाँ तक कि ख़तरनाक केमिकल आदि का उत्पादन किया जाता है। इन सभी कम्पनियों में लगभग 40000 मज़दूर काम करते हैं।

गीडा में संचालित प्रमुख कम्पनियों में गैलेंट स्टील इण्डिया, ग्लाइकोल, आई जीएल डिस्टिलरी, एबीआर पेट्रो, निमानी प्लाईवुड, आज़म रबर्स, ट्राइडेंट स्टील, विनायक उद्योग, एस एण्ड जे वेबर जेस, मोदी केमिकल्स, अंकुर स्टील फैक्ट्री, पारले, केयान डिस्टिलरी आदि है। इनमें से कई कम्पनियों का उद्घाटन योगी आदित्यनाथ ने ही किया है।

गीडा ने गोरखपुर के दक्षिण में स्थित धुरियापार में 5500 एकड़ में औद्योगिक गलियारा विकसित कर रहा है जिसमें कि अब तक 600 एकड़ भूमि अधिग्रहीत कर ली गयी है। धुरियापार में कुल 13 सेक्टर विकसित किए जायेंगे। इस क्षेत्र में भारतीय ऑयल द्वारा कम्प्रेस्ड बायो गैस प्लाण्ट की स्थापना प्रमुख है। इसके अलावा, अडानी समूह और जेके समूह द्वारा यहाँ सीमेण्ट फैक्ट्रियाँ बनायी जायेंगी। अभी जबकि गीडा का औद्योगिक क्षेत्र निर्माणाधीन है तब इतनी दुर्घटनाएँ आने वाले दिनों की भयावह तस्वीर पेश कर देते हैं। इस इलाक़े में सुरक्षा-व्यवस्था के नाम पर पूरा पुलिसिया तन्त्र इस तरह विकसित किया गया है कि किसी तरह की राजनीतिक हलचल को रोका जा सके और मज़दूरों को इस बर्बर तन्त्र के नीचे दबाकर रखा जा सके।

निश्चित तौर पर, गीडा में आने वाले वक़्त में मालिक, सरकार और प्रशासन का गठजोड़ मज़दूरों के ख़िलाफ़ बहुत तानाशाहाना तरीक़े से काम करेगा। इसलिए गीडा के इलाक़े में काम करने वाले मज़दूरों को भविष्य में अपने हितों के मद्देनज़र अपनी मजबूत वर्गीय लामबन्दी करनी होगी। उन्हें अपनी एकजुट यूनियन खड़ी करनी होगी। मज़दूर यदि संगठित हो जायें तो प्रशासन का ज़ोर उन पर नहीं चल सकता है, चाहे वे कितना ही प्रयास क्यों न कर लें। पुलिसिया दमन के बूते मज़दूरों को कुचलने में प्रशासन और मालिकान तभी कामयाब होते हैं, जब मज़दूर खण्ड-खण्ड में टूटे होते हैं और अपनी एकजुट यूनियन नहीं खड़ी करते। गीडा के मज़दूरों को ऐसी यूनियन खड़ी करने के लिए आज ही कमर कस लेनी होगी।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेलपर्स यूनियन ने वर्करों के प्रमोशन के मसले को लेकर सौंपा ज्ञापन

'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' ने 9 मई को दिल्ली के महिला एवं बाल विकास विभाग को आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के पदोन्नति के मसले को लेकर एक ज्ञापन सौंपा। दिल्ली के महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा 2 मई को जारी एक अधिसूचना के अनुसार सुपरवाइज़र के पद पर भर्ती के लिए आवेदन मँगवाए गये थे। भर्ती की इस प्रक्रिया में 50 फ़ीसदी पद आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के पदोन्नति के लिए तय किये गये हैं, लेकिन शैक्षणिक योग्यता पिछली भर्ती से बदल दी गयी है। 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' से प्रियम्वदा ने बताया कि "इस अधिसूचना में भर्ती की प्रक्रिया के बारे में कोई जानकारी नहीं है, मसलन क्या भर्ती किसी परीक्षा के ज़रिये होगी, अथवा पदोन्नति के लिए योग्य कार्यकर्ताओं का चयन किस रूप में होगा, इसका कोई विवरण नहीं है। यही नहीं, आवेदन की पूरी प्रक्रिया के लिए विभाग ने केवल 5 दिनों का ही समय तय किया है। विभाग इस प्रक्रिया को आनन-फ़ानन में अंजाम देना चाहता है। यह अधिसूचना विभाग के ग़ैर-जनवादी और अपारदर्शी रवैये को ही दिखाती है। पदोन्नति की यह प्रक्रिया ही लागू होने में काफ़ी समय लग गया है, इसके बावजूद सभी योग्य आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को मौक़ा भी नहीं दिया जा रहा है। विभाग ने हेल्परों के प्रमोशन की प्रक्रिया भी तब जाकर शुरू की थी जब यूनियन ने इस मुद्दे को उठाया था।

महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय के तहत समेकित बाल विकास परियोजना की शुरुआत 1975 में की गयी थी। उस वक़्त सरकार ने यह दावा किया था कि इस योजना के तहत ज़रूरतमन्द स्त्रियों को "स्वयंसेविका" के रूप में कुछ काम करने का अवसर मिलेगा। लेकिन इतने वर्षों में आँगनवाड़ीकर्मियों की जिम्मेदारियों का दायरा लगतार बढ़ता गया है और "स्वयंसेवा"के नाम पर सस्ते श्रम के स्रोत के रूप में स्त्रियों का शोषण किया जा रहा है। इसके साथ ही इस परियोजना के तहत इन "स्वयंसेविकाओं"की शैक्षणिक योग्यता भी लगातार बदलती गयी है। आज इस स्कीम के तहत देश भर में क़रीब 24 लाख आँगनवाड़ीकर्मी कार्यरत हैं। एक समय में आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका के लिए मैट्रिक और हाई स्कूल पास करना ही पर्याप्त था, इसके बावजूद 2012 में केन्द्र सरकार द्वारा जारी एक रिपोर्ट में यह बताया गया की 91 फ़ीसदी

आँगनवाड़ी कार्यकर्ता इससे ज़्यादा शिक्षित थीं। अब बदलते हुए हालात को देखते हुए कार्यकर्ता के पद के लिए शैक्षणिक योग्यता को और बढ़ा दिया गया है व सहायिका के पद पर भी ग्रेजुएट और पोस्ट-ग्रेजुएट महिलाओं को तरजीह दी जाती है। यह इस बात का भी परिचायक है कि आज बेरोज़गारी का क्या आलम है : ग्रेजुएट और पोस्ट-ग्रेजुएट की डिग्रियाँ हासिल करने के बाद भी महिलाएँ एक ऐसे विभाग में आवेदन करती हैं जहाँ न्यूनतम वेतन तक नहीं मिलता। समेकित बाल विकास परियोजना के मुख्य तौर पर केन्द्र सरकार की परियोजना होने के बावजूद अलग-अलग राज्यों में भर्ती व पदोन्नति के नियम अलग-अलग हैं। मसलन जम्मू और कश्मीर में 2019 में जारी एक ऑर्डर के अनुसार ग्रेजुएट आँगनवाड़ी कार्यकर्ता जिनके पास 5 साल का काम का अनुभव है और मैट्रिक पास आँगनवाड़ी कार्यकर्ता जिनके पास 10 साल का काम का अनुभव है, सुपरवाइज़र के 25-25 फ़ीसदी खाली सीटों पर प्रोमोट की जाएँगी।

'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' द्वारा सौंपे गये ज्ञापन में कई परियोजनाओं में सीडीपीओ व डीओ द्वारा ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से टर्मिनेट की गयी महिलाओं के आवेदन को न स्वीकारने के मसले को भी रेखांकित किया गया। इस ज्ञापन के ज़रिये यूनियन की माँग थी कि –

1) वर्कर्स के पदोन्नति की प्रक्रिया में पूर्ण स्पष्टता और पारदर्शिता बहाल की जाए।

2) जब तक भर्ती की प्रक्रिया पारदर्शी नहीं होती है तब तक 2 मई के ऑर्डर के तहत होने वाली पदोन्नति स्थगित कर दी जाए।

3) इण्टरमीडिएट, ग्रेजुएशन व मास्टर्स के सभी डिग्री धारक वर्कर्स को उनके 10 साल के अनुभव के साथ फ़ॉर्म भरने का अवसर दिया जाए व कोई उम्र सीमा न रखी जाए।

4) योग्यता की शर्तें बदलने पर महिलाकर्मियों को समय रहते इसकी सूचना दी जाए।

5) ग़ैर-क़ानूनी रूप से बर्ख़ास्त की गयी आँगनवाड़ी वर्कर्स के भी आवेदन स्वीकार किये जायें क्योंकि बर्ख़ास्तगी का मसला अभी उच्च न्यायालय में विचाराधीन है।

6) उपरोक्त माँगों पर तुरन्त कार्रवाई करने का विभाग लिखित आश्वासन दें।

– बिगुल संवाददाता

मनरेगा मज़दूरों ने कैथल के ढाण्ड ब्लॉक में प्रदर्शन कर मज़दूर दिवस के शहीदों को किया याद

मई दिवस का संकल्प – लड़कर लेंगे सारे हक़

1 मई, अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर हरियाणा के कैथल ज़िले में ढाण्ड ब्लॉक में मनरेगा मज़दूरों ने अपने हक़-अधिकारों के लिए प्रदर्शन किया। यूनियन द्वारा बीडीपीओ को मनरेगा मज़दूरों की माँग का ज्ञापन सौंपा गया।

क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के साथी अजय आशु ने बताया कि 1 मई मेहनतकश वर्ग का संकल्प दिवस है। आज के दिन ही शिकागो के हमारे शहीद मजदूरों ने '8 घण्टे काम, 8 घण्टे आराम और 8 घण्टे मनोरंजन' की माँग का नारा बुलन्द किया था। आज मई दिवस के शहीदों को याद करने का मकसद है मज़दूरों-मेहनतकश लोगों के हक़-अधिकारों की लड़ाई को नये सिरे से संगठित करना। जिन मज़दूरों ने सुई से लेकर जहाज तक का निर्माण किया है; फैक्ट्री, कारख़ाने, रेलवे, बसें, अनाज तक सारी चीज़ें पैदा की हैं, आज वही लोग इन चीज़ों से वंचित हैं। इसलिए मई दिवस के शहीदों को याद करने का मकसद है आज नये सिरे से मज़दूरों के हक़-अधिकारों की लड़ाई तेज की जाये।

फरल गाँव की मेट सोनिया व विकास ने बताया कि हम मनरेगा मज़दूर मई दिवस के अवसर अपने उन मज़दूर नेताओं को याद कर रहे है जिन्होंने मज़दूरों के हक़-अधिकारों की लड़ाई लड़ी थी। लेकिन आज पूँजीपतियों की सरकार मज़दूरों के सारे हक़-अधिकार छीनने पर आमादा है। मनरेगा मज़दूरों के हालात पर ही बात की जाये तो आज कैथल जिले में मनरेगा के काम के हालात बेहद बदतर है। वैसे तो सरकार मनरेगा में 100 दिन के काम की गारण्टी देती है लेकिन वह अपनी ज़ुबान पर कहीं भी खरी नहीं उतरती। आँकड़ों के हिसाब से पूरे देशभर में और कलायत में भी मनरेगा में काम की औसत लगभग 25-30 दिन सालाना भी बड़ी मुश्किल से पड़ती है। हम सभी जानते है कि गाँवों में भी कमरतोड़ महँगाई के कारण मज़दूरों को परिवार चलाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में हर रोज़ अपना हाड़-माँस गलाकर पेट भरने वाले मज़दूरों को गाँव

में भी किसी न किसी काम-धन्धे की ज़रूरत तो है ही। ऐसे में उनका सहारा केवल मनरेगा ही हो सकता है। लेकिन मनरेगा में पहले से ही बजट में कमी के साथ-साथ अफसरों पर भी धाँधली करने के आरोप लगते रहते हैं। ऐसे में सरकार को क़ायदे से मनरेगा के बजट, कार्यदिवस व दिहाड़ी में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए। साथ ही आज मनरेगा कार्यालय में कर्मचारियों की कमी और सरकारों की मज़दूर - विरोधी नीतियों के कारण मनरेगा बजट का सदुपयोग नहीं हो पा रहा है। बार-बार काम की डिमाण्ड देने के बावजूद भी मज़दूरों को काम नहीं मिल पा रहा है। इसके खिलाफ़ हम सभी मज़दूरों को एकजुट होकर आवाज़ उठानी होगी।

मई दिवस के अवसर पर यूनियन ने सभी मज़दूर साथियों से अपील की कि क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के सदस्य बनें। मज़दूरों के हक- अधिकारों की लड़ाई तभी आगे बढ़ सकती है जब उनके पास अपनी एक ईमानदार यूनियन होगी, क्योंकि यूनियन ही वह संगठन हो सकता है जिसके बैनर तले सभी मज़दूर एकजुट होकर अपने संघर्ष को आगे बढ़ा सकते हैं।

– बिगुल संवाददाता

एक बार फिर आग में झुलसी मज़दूरों की ज़िन्दगियाँ!

दिल्ली के शाहाबाद दौलतपुर में आग से हज़ारों झुग्गियाँ तबाह, चार बच्चों की मौत

● अदिति

27 अप्रैल को शाहाबाद दौलतपुर गाँव के श्रीनिकेतन अपार्टमेण्ट के पास की झुग्गियों में लगी भीषण आग से हज़ारों झुग्गियाँ तबाह हो गयी। इस घटना में चार बच्चों की मौत हो गयी और हज़ारों लोगों की ज़िन्दगियाँ तबाह-बर्बाद हो गयी। इन झुग्गियों में ज़्यादातर आबादी कूड़ा बीनने का काम करती है। झुग्गियों में आग उस समय लगी जब लोग काम पर गये हुए थे। एक घर में सिलेण्डर फटने की वजह से आग ने भयानक रूप ले लिया और हज़ार के करीब झुग्गियाँ आग की चपेट में आ गयी। स्थानीय प्रशासन ने इस घटना पर बहुत देरी से कार्रवाई की। साथ ही दमकल की गाड़ियों को भी पहुँचने में देरी हुई। प्रशासन द्वारा तुरन्त कार्रवाई न करने और घटना के प्रति लापरवाही दिखाने के कारण भी आग पूरे इलाक़े में फैल गयी और हज़ारों लोग सड़क पर आ गये। अब तक लोग दर-दर मारे फ़िर रहे है। सालों की मेहनत-मज़दूरी करके, एक-एक पायी जोड़कर अपना घर बनाते हैं और अचानक से सब बर्बाद हो जाता है। घटना के बाद अभी तक लोगों के लिए रहने की व्यवस्था नहीं की गयी है।

ये घटना कोई पहली घटना नहीं है। इससे पहले भी फ़रवरी में शाहाबाद डेरी निकट बंगाली कॉलोनी की झुग्गियों में भी आग लगी थी, जिसमें 80 के क़रीब झुग्गियाँ जल कर राख हो गयी थी। बंगाली कॉलोनी के निवासी आज भी मुआवज़े के लिए प्रशासन के चक्कर काट रहे हैं। शाहाबाद दौलतपुर गाँव और शाहाबाद डेरी के आस-पास अनेकों झुग्गियाँ हैं, जहाँ झुग्गियों में हर साल गर्मी के मौसम में आग लगती है। शाहाबाद डेरी के इर्द-गिर्द बसी झुग्गियों में आग लगना बहुत स्वाभाविक सी घटना बन गयी है। हर साल की तरह इस साल भी प्रशासन कुम्भकरण की नींद ही सोता ही रहा। ऐसी घटनाओं पर प्रशासन से लेकर आपदा प्रबन्धन तक के लोगों का रवैया बेहद शर्मनाक और ढीला रहता है।

मज़दूरों-मेहनतकशों की समस्याओं के प्रति सरकार से लेकर

प्रशासन तक का रवैया हमेशा असंवेदनशील ही होता है। अभी कुछ दिनों पहले दिल्ली विधानसभा चुनाव में सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ पक्का आवास देने का हल्ला मचा रही थी। हर चुनाव से पहले झुग्गीवालों की उन्हीं बस्तियों में जाकर वोट माँगने वाले नेता-मन्त्रियों को चुनाव जीत जाने के बाद वह झुग्गियाँ नज़र ही नहीं आती। अगर वाक़ई सरकार को झुग्गीवालों की फ़िक्र होती तो झुग्गियों के जलने के बाद उनके लिए रहने का बन्दोबस्त करती, झुग्गी की जगह उन्हें पक्के मकान देती। पक्का आवास हमारा मूलभूत अधिकार है। मज़दूरों की झुग्गियों में कभी आग लगती है, तो कभी उनकी झुग्गियों को सरकार द्वारा तोड़ दिया जाता है। यह हालात पूरे देश के मेहनतकशों के हैं। आमतौर पर पूरे देश भर में अलग-अलग कारणों से ग़रीब-मेहनतकशों को उनके घरों से बेघर करने की घटनाएँ बार-बार हमें यह दिखाती है कि तमाम सरकारें चाहे जो भी वादा कर ले उसकी असलियत यही है कि किसी भी पार्टी की सरकार हो वे जनता के आवास के बुनियादी अधिकार के साथ ग़द्दारी ही करने का काम करती हैं। देश के प्रमुख शहर जिस मेहनतकश आबादी के दम पर चलते हैं, उनके लिए इन सरकारों के पास कोई योजना नहीं है। सुई से लेकर जहाज़ तक बनाने और चलाने वाली मेहनतकश अवाम को उसी शहर के लिए गन्दा समझा जाता है, जिस शहर को चमकाने का वह काम करते हैं। शहर के सौन्दर्यीकरण के नाम पर मेहनतकशों को बेघर तक कर दिया जाता है। तमाम सरकारें इस आबादी को शहर के लिए गन्दगी समझती है। ऐसी घटनाओं पर चुप्पी तमाम चुनावबाज़ पार्टियों के चरित्र को उज़ागर कर देती है। इसलिए सभी मेहनतकशों को समझ जाना चाहिए कि मालिकों-धन्नासेठो की पार्टियाँ कभी भी आम मेहनतकश जनता के मुद्दों के लिए नहीं लड़ सकती हैं।

वैसे देखा जाये तो झुग्गियों में आग लगने जैसी घटनाओं की जड़ में भी पूँजीवादी व्यवस्था ही है, जो मेहनतकशों को इन हालातों में रहने के लिए मजबूर करती है। वास्तव में जिस पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर आज हम जी रहे हैं, उसमें मेहनतकशों का शोषण सिर्फ़ उनके काम करने की जगह पर ही नहीं होता बल्कि कारख़ानों, फैक्टरियों से निकल कर जिन दड़बेनुमा झुग्गियों में उन्हें जीने के लिए विवश किया जाता है, वहाँ भी लगातार उनकी मानवीय गरिमा पर चोट की जाती है। ये सरकारें मुनाफ़ाखोर पूँजीपति वर्ग की ही नुमाइन्दगी करती हैं और मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था की रक्षा का ही काम करती हैं। इस व्यवस्था से यह उम्मीद करना बेकार है कि वह आम मेहनतकश आबादी के बुनियादी अधिकारों को सुनिश्चित करके, उनकी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करे।

ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए आज ज़रूरत है मेहनतकशों को एक साथ मिलकर खड़े होने की और सबको पक्के आवास के अधिकार के लिए आन्दोलन करने की। किसी भी देश की सरकार की यह ज़िम्मेदारी है कि वह उस देश में रहने वाले हर नागरिक को रहने के लिए पक्के आवास की गारण्टी दें। यह हमारा हक़ है और इसे हासिल करने के लिए आज जाति-धर्म को छोड़कर अपने वर्ग के आधार पर एकजुट होने की ज़रूरत है।

दिल्ली के मज़दूरों के लिए न्यूनतम वेतन बढ़ाने की घोषणा! भाजपा सरकार द्वारा फेंका गया एक और जुमला !!

● भारत

हाल ही में दिल्ली में भाजपा सरकार ने न्यूनतम मज़दूरी में बढ़ोतरी की घोषणा की है। इस बढ़ोतरी को 1 अप्रैल, 2025 से लागू करने की बात की गयी है। दिल्ली में अब अकुशल मज़दूरों के लिए न्यूनतम वेतन 18,456 रुपये, अर्ध-कुशल मज़दूर के लिए 20,371 रुपये और कुशल मज़दूरों के लिए 22,411 रुपये होगा। वैसे देखा जाये तो आज जिस हिसाब से महँगाई बढ़ चुकी है, न्यूनतम वेतन 30,000 रुपये मासिक से शुरू होना चाहिए। भाजपा सरकार दावा कर रही है इससे हर मज़दूर को फ़ायदा मिलेगा। दिल्ली के कारख़ानों में काम करने वाला हर मज़दूर जानता है कि न्यूनतम वेतन में बढ़ोतरी सिर्फ़ काग़ज़ों की शोभा बढ़ाने के लिए है। वहीं एक तरफ़ भाजपा सरकार की यह घोषणा है और दूसरी तरफ़ भाजपा के मेहनतकश विरोधी काले क़ारनामे। वेतन बढ़ाने के यह दावे गुलाबी सपनों से अधिक कुछ नहीं है। ज्ञात हो पिछले वर्ष मोदी सरकार ने भी मज़दूरों के वेतन में बढ़ोतरी की थी, पर उसकी सच्चाई सब जानते है कि यह आज तक किसी भी फैक्ट्री में लागू नहीं हुआ। वैसे दिल्ली और देश के मज़दूरों के लिए बने श्रम क़ानून शुरू से ही नाकाफ़ी थे। जो क़ानून थे भी वे असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की विशाल आबादी के लिए शायद ही कभी अमल में आते थे। उनको भी समय-समय पर पूँजीपतियों के पक्ष में बदला जाता रहा है।

अगर सही मायने में दिल्ली में भाजपा सरकार की मंशा "मज़दूरों का भला" करने की होती, तो वह सबसे पहले हर फैक्ट्री में मौजूदा श्रम क़ानूनों को लागू करवाने का प्रयास करती, परन्तु पंगु बनाये गये श्रम विभाग के ज़रिये यह सम्भव ही नहीं है। दिल्ली के 27 अधिकृत औद्योगिक क्षेत्रों के फैक्ट्रियों और इसके अलावा रिहायशी क्षेत्रों में गैर-क़ानूनी तरीके से चलने वाली फैक्ट्रियों में अपवाद को छोड़कर कहीं भी न्यूनतम वेतन का क़ानून लागू नहीं होता। सामान्यतः दिल्ली की फैक्ट्रियों में महिलाओं को 6000 से 7000 और पुरुषों को 8000 से 10000 वेतन मिलता है। क्या यह बात दिल्ली की मुख्यमन्त्री रेखा गुप्ता को नहीं पता है? उन्हें सब पता है, पर वह कभी पूँजीपतियों का नुक़सान नहीं होने देंगी। लुटेरे मालिकों के वर्ग और भाजपा की मिलीभगत आज किसी से छुपी नहीं है। यही कारण है कि दिल्ली में काम करने वाली मेहनतकश आबादी के बीच न तो इस क़दम की कोई सुगबुगाहट है और न ही कोई आशा है। मज़दूर अपने अनुभव से जानते हैं कि हर साल वेतन में बढ़ोतरी की घोषणाएँ होती हैं, पर असल में उनका वेतन कभी नहीं बढ़ता है। दिल्ली की 65 लाख मज़दूर आबादी जैसे घरेलू कामगारों, डाइवरों, सफ़ाईकर्मियों आदि के लिए क्या न्यूनतम मज़दूरी का संशोधित क़ानून लागू हो पायेगा? 90 प्रतिशत मज़दूर आबादी जो दिहाड़ी, कैजुअल, पीस रेट, ठेके पर काम कर रही है, उसे न्यूनतम मज़दूरी क़ानून के मुताबिक़ मज़दूरी मिल पा रही है या नहीं इसकी कोई भी जानकारी दिल्ली सरकार के पास नहीं है। श्रम विभाग की स्थिति की अगर बात करें तो उसके पास इतने कर्मचारी ही नहीं हैं कि सभी औद्योगिक क्षेत्रों व फैक्ट्रियों की जाँच-पड़ताल की कर सके। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दिल्ली के औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों के पास यह साबित करने का कोई भी तरीक़ा नहीं है कि वे किस फ़ैक्टरी में काम करते हैं, अगर यह साबित हो जाये तो मालिक अपनी फ़ैक्टरी का नाम बदल देता है और बताता है कि पुरानी फ़ैक्टरी में तो वह मालिक ही नहीं था और इसके बाद श्रम विभाग मज़दूर पर यह ज़िम्मेदारी डाल देता है कि वह साबित करे कि मालिक कौन है। निश्चित ही न्यूनतम वेतन में बढ़ोतरी से जिन्हें थोडा-बहुत फ़ायदा पहुँचेगा, वह सरकारी कर्मचारियों और संगठित क्षेत्र का छोटा-सा हिस्सा है, परन्तु इनकी संख्या लगातार कम ही हो रही है।

यह भी बता दें कि यही "मज़दूर हितैषी" भाजपा सरकार है, जो चार लेबर कोड लेकर आयी है, जिसके लागू होने के बाद न्यूनतम वेतन जैसे क़ानूनों का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। मोदी सरकार द्वारा पूँजीपतियों को रहे-सहे श्रम क़ानूनों की अड़चन से मुक्त कर मज़दूरों के बेहिसाब शोषण करने के लिए 44 केन्द्रीय श्रम क़ानूनों की जगह चार कोड या संहिताएँ बनायी गयी हैं- मज़दूरी पर श्रम संहिता, औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता, सामाजिक सुरक्षा पर श्रम संहिता और औद्योगिक सुरक्षा एवं कल्याण पर श्रम संहिता। मज़दूरी श्रम संहिता के तहत पूरे देश के लिए वेतन का न्यूनतम तल-स्तर निर्धारित किया जायेगा। सरकार का कहना है कि एक त्रिपक्षीय समिति इस तल- स्तर का निर्धारण करेगी, मगर इस सरकार के श्रम मन्त्री पहले ही नियोक्ताओं के प्रति अपनी उदारता दिखाते हुए प्रतिदिन के लिए तल-स्तरीय मज़दूरी 178 रुपये करने की घोषणा कर चुके हैं। यानी, मासिक आमदनी होगी महज़ 4,628 रुपये! यह राशि आर्थिक सर्वेक्षण 2017 में सुझाये गये तथा सातवें वेतन आयोग द्वारा तय किये गये न्यूनतम मासिक वेतन 18,000 रुपये का एक-चौथाई मात्र है। यही नहीं पन्द्रहवें राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (1957) की सिफ़ारिशों (जिसके अनुसार न्यूनतम मज़दूरी, खाना-कपड़ा-मकान आदि बुनियादी ज़रूरतों के आधार पर तय होनी चाहिए) और सुप्रीम कोर्ट के 1992 के एक निर्णय की अनदेखी करते हुए कैलोरी की ज़रूरी खपत को 2700 की बजाय 2400 पर रखा गया है और तमाम बुनियादी चीज़ों की लागत भी 2012 की क़ीमतों के आधार पर तय की गयी है। इस कोड में 'रोज़गार सूची' को हटा दिया गया है, जो श्रमिकों को कुशल, अर्द्धकुशल और अकुशल की श्रेणी में बाँटती थी।

वैसे देखा जाये तो अभी भी 90 फ़ीसदी अनौपचारिक मज़दूरों के जीवन व काम के हालात नारकीय हैं। अभी भी मौजूद श्रम क़ानून लागू कहीं लागू नहीं किये जाते, लेकिन अभी तक अगर कहीं मज़दूर लेबर कोर्ट का रुख़ करते थे और कुछ मसलों में आन्दोलन की शक्ति के आधार पर क़ानूनी लड़ाई जीत भी लेते थे। लेकिन अब वे क़ानून ही समाप्त हो जायेंगे और जो नयी श्रम संहिताएँ आ रही हैं, उनमें वे अधिकार मज़दूरों को हासिल ही नहीं हैं, जो पहले औपचारिक तौर पर हासिल थे। इन चार श्रम संहिताओं का अर्थ ही है मालिकों, कॉरपोरेट घरानों और पूँजीपति वर्ग द्वारा मज़दूरों को जीवनयापन योग्य मज़दूरी, सामाजिक सुरक्षा और गरिमामय कार्यस्थितियाँ दिये बग़ैर ही भयंकर शोषण करने की खुली छूट देना। यह हमसे मानवीयता की बाक़ी शर्तों को भी छीन लेगा। यह हमें पाशविकता की ओर धकेल देगा। कुल मिलाकर कहें तो अगर चार लेबर कोड लागू होते है, तो मज़दूर वर्ग को ग़ुलामी जैसे हालात में काम करने के लिए मज़बूर होना पड़ेगा। यह बात हर मज़दूर को समझ लेना चाहिए कि दिल्ली और केन्द्र में बैठी भाजपा सरकार मज़दूरों की सबसे बड़ी दुश्मन है और इसलिए दिल्ली के मज़दूरों के लिए वेतन बढ़ाने की घोषणा का भी वास्तविकता से कोई लेना-देना नहीं है, बल्कि यह भी तमाम जुमलो की तरह एक जुमला ही है।

न्यूनतम वेतन का सवाल बाज़ार से और अन्ततः इस पूँजीवादी व्यवस्था से जुड़ता है। इस व्यवस्था में मज़दूरों का वेतन असल में मालिक के मुनाफ़े और मज़दूर की ज़िन्दगी की बेहतरी के लिए संघर्ष का सवाल है। फैक्ट्री में मज़दूर को बस उसके जीवनयापन हेतु वेतन भत्ता दिया जाता है और बाक़ी जो भी मज़दूर पैदा करता है, उसे मालिक अधिशेष के रूप में लूट लेता है। अधिक से अधिक अधिशेष हासिल करने के लिए मालिक वेतन कम करने, काम के घण्टे बढ़ने या श्रम को ज़्यादा सघन बनाने का प्रयास करते हैं और इसके ख़िलाफ़ मज़दूर संगठित होकर ही संघर्ष कर सकते हैं। आज हमें वेतन बढ़ोतरी के लिए यूनियनों में संगठित होकर लड़ना ही होगा। हमेशा से मज़दूरों ने एकता के दम पर ही सभी लड़ाइयों को जीता है। श्रम क़ानूनों को भी हम अपनी एकता के दम पर लड़कर ही लागू करवा सकते हैं। दिल्ली में ही आँगनवाडी कर्मियों, वज़ीरपुर के स्टील मज़दूरों, करावल नगर के बादाम मज़दूरों के संघर्षों के उदाहरण हमारे सामने है, जिन्होंने एकजुट होकर हड़ताल के दम पर अपना न्यूनतम वेतन बढ़वाया है।

इसके साथ ही हमें यह भी समझना होगा कि हमारी लड़ाई महज़ न्यूनतम वेतन बढ़ाने तक करवाने तक सीमित नहीं है। अगर हम अपनी लड़ाई को महज़ न्यूनतम वेतन बढ़ाने तक ही सीमित करेंगे तो गोल-गोल घूमते रह जायेंगे। जब भी महँगाई बढ़ेगी तो उसके अनुसार पहले की बढ़ी हुई मज़दूरी फिर कम होने लगती है। इसलिए हर पाँच साल में दोबारा न्यूनतम मज़दूरी को बढ़ाने के लिए न्यूनतम मज़दूरी आयोग का गठन किया जाता है (चार लेबर कोड आने के बाद यह आयोग भी बन्द हो जायेगा) और नये सर्वे के ज़रिये नये बढ़े हुए वेतन की माँग को लागू करके तात्काालिक तौर पर मेहनतकशों का गुस्सा शान्त किया जाता है। न्यूनतम वेतन बढ़ाने और श्रम क़ानून के लागू करवाने के संघर्ष के साथ-साथ हमें इस पूँजीवादी व्यवस्था की चौहद्दियों के बारे में भी जानना होगा और दूरगामी तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था की 'शोषण की व्यवस्था को नाश करने' के लिए संघर्ष करना होगा। न्यूनतम वेतन बढ़ाने, श्रम क़ानून लागू करवाने की लड़ाई हमारी तात्कालिक लड़ाई है और हमारा दूरगामी लक्ष्य मज़दूरों के शोषण पर आधारित इस पूँजीवादी व्यवस्था को ख़त्म करना है। इसलिए इस संघर्ष को लड़ने के लिए हमें आज से ही एकजुट होना होगा, तभी हमारा आने वाला भविष्य बेहतर हो सकता है।

पाठ्यक्रमों में बदलाव और इतिहास का विकृतिकरण करना फ़ासीवादी एजेण्डा है!

(पेज 20 से आगे)

एक बड़ी आबादी को भ्रम में रखते हैं और किसी रामराज्य जैसे मिथकीय समाज का सपना दिखाते हैं। जहाँ सब चंगा था, दूध घी की नदियाँ बह रही थीं। (यहीं सवाल आता है कि क्या वह दूध घी की नदियाँ आम मेहनतकश आबादी के लिये बह रहीं थी।)

भारतीय फ़ासीवादियों का इतिहास को बदलने की एक वजह और है। वह है भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में इनकी ग़द्दारी। आज यह कितना भी ख़ुद को सबसे बड़ा देशभक्त होने के तमगे दे लें लेकिन सच्चाई से सब वाकिफ़ हैं कि आज़ादी की लड़ाई में इन्होंने एक ठेला तक नहीं उठाया उल्टे चन्द्रशेखर आज़ाद जैसे क्रान्तिकारियों की मुखबिरी की। वी डी सावरकर जैसे इनके नेताओं ने माफ़ीनामे लिखकर दिये।

यह इतिहास के बारे में एक खण्डित दृष्टिकोण विकसित करके ऐतिहासिक तथ्यों और पौराणिक कथाओं के बीच मौजूद रेखा को धुँधला कर देना चाहते हैं। हिटलर ने जर्मनी के टुटपुँजिया वर्गों और मज़दूरों के एक हिस्से के लिए यहूदियों को एक काल्पनिक शत्रु के रूप में प्रस्तुत किया था। जब लोग समस्या के असली कारणों को नहीं देख पाते तो उन्हें एक शत्रु की आवश्यकता होती है; वास्तविक या काल्पनिक। क्रान्तिकारी ताक़तें उन्हें असली शत्रु यानी पूँजीपति वर्ग से परिचित कराती हैं, और फ़ासीवादी ताक़तें असली शत्रु की रक्षा करने के लिए उनके सामने किसी काल्पनिक शत्रु को पेश करती हैं। इसके लिए अतीत के "गौरव", कल्पित "सांस्कृतिक वैभव" का सहारा लिया जाता है; अफवाहों और मिथकों का सहारा लिया जाता है और राजनीतिक चेतना के अभाव से पीड़ित, पूँजीवाद द्वारा पैदा की गयी महँगाई, बेरोज़गारी, बेघरी, भूख से त्रस्त जनता इस लहर में बह चलती है। यही फ़ासीवाद की कार्यपद्धति है, इसी पर भारतीय फ़ासीवादी ताक़तें अमल कर रही हैं।

मेहनतकश अवाम को भी फ़ासीवादी ताक़तों और फ़ासीवाद की असलियत को बेपर्दा करके जनता के बाक़ी हिस्सों तक लेकर जाना होगा और जनता की फौलादी एकजुटता कायम करनी होगी। फ़ासीवाद का मुकाबला हमेशा मज़दूर वर्ग ने किया है। क्रान्तिकारी ताक़तों को मज़दूर वर्ग को उनकी आर्थिक माँगों पर तो संगठित करना ही होगा, साथ ही उनके सामने इस पूरी व्यवस्था की सच्चाई को बेपर्द करना होगा और राजनीतिक तौर पर उन्हें जागृत, गोलबन्द और संगठित करना होगा। इसके अलावा कोई रास्ता नहीं है।

दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया!

1 मई यानी मज़दूर दिवस के मौक़े पर दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन ने आम सभा का आयोजन किया। दिल्ली के सेण्ट्रल पार्क में आयोजित होने वाली इस सभा को रोकने की पुलिस व प्रशासन द्वारा काफ़ी कोशिशें की गयी। महिलाएँ पार्क में बैठकर बातचीत न कर पायें इसलिए पार्क के सभी प्रवेश द्वारों को बन्द कर दिया गया और आसपास भी बैठ रही महिलाकर्मियों को पुलिस द्वारा फ़र्ज़ी मुकदमे का डर दिखाकर डराया-धमकाया जाने लगा। इन सबके बावज़ूद महिलाओं ने अपनी सभा चलाने की ठानी और राजीव चौक के एक अन्य पार्क में बैठकर 'मई दिवस के क्रान्तिकारी इतिहास और आज के वक़्त में इसकी ज़रूरत' पर अपनी बातचीत को जारी रखा।

कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए आँगनवाड़ीकर्मी रेखा ने मई दिवस पर यूनियन द्वारा निकाले गये पर्चे का पाठ किया। पर्चे पर पाठ के बाद उसपर विस्तृत चर्चा हुई। यूनियन अध्यक्षा शिवानी ने मई दिवस के शहीदों को याद करते हुए यह बताया कि "1 मई के दिन सिर्फ़ बेहतर कार्यस्थितियों की माँग तक सीमित नहीं था बल्कि दुनियाभर के मज़दूरों के लिए यह दिन हर तरह के शोषण-अत्याचार और ग़ुलामी की दासता के ख़िलाफ़ उठ खड़े होने का दिन था। मगर आज हम देखते हैं कि इस दिन को महज़ आराम और मनोरंजन के दिन में तब्दील कर दिया गया है। आज इसके बरक्स हमें मज़दूरों के संघर्षों के असल इतिहास को लोगों तक लेकर जाना होगा।"

उन्होंने बताया कि मई दिवस के संघर्ष की शुरुआत आज से तक़रीबन 139 साल पहले अमेरिका के शिकागो शहर में हुई। मज़दूरों ने अपने काम और जीवन के असहनीय हालत के ख़िलाफ़ संघर्ष का बिगुल फूँका जिसका नारा था 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे मनोरंजन, आठ घण्टे आराम'। इस लड़ाई में मज़दूरों ने एक इन्सान जैसे जीवन का सवाल केन्द्र में रखा।

सभा में आगे लोगों ने इस विषय पर बात रखी कि आज क्यों देश और दुनियाभर के तमाम मेहनतकशों के लिए मई दिवस के गौरवशाली इतिहास को जानना पहले से कहीं अधिक ज़रूरी हो जाता है।

आँगनवाड़ीकर्मी चाँदनी ने बताया कि अपने क्रान्तिकारी अतीत को जाने बग़ैर हम वर्तमान समय में अपने संघर्ष को सही दिशा नहीं दे सकते हैं और न ही एक समतामूलक समाज के लिए आगे बढ़ सकते हैं। हमारे पुरखों ने सड़कों पर अपना ख़ून बहाया था और फाँसी का फन्दा चूमा था और इसी वज़ह से आज थोड़े-बहुत हक़ अधिकार हमें हासिल हो सके हैं।

चर्चा में महिलाकर्मियों ने अपनी बात रखी कि आज जब मज़दूर आबादी का एक बड़ा हिस्सा असंगठित क्षेत्र में काम करने के लिए मज़बूर है, उनके लिए किसी तरह का कोई श्रम क़ानून लागू नहीं होता है और न ही कोई सुविधा मयस्सर है तो ऐसे वक़्त में मई दिवस की विरासत हमें अपने हक़ों के लिए संघर्ष की प्रेरणा देती है।

देशभर में लगभग 39 लाख स्कीम वर्कर्स काम कर रही हैं मगर सरकार इन्हें मज़दूर तक नहीं मानती। आँगनवाड़ी, आशाकर्मियों और मिड-डे-मील वर्करों से बेहद मामूली मानदेय में काम लिया जाता है, इन्हें न तो न्यूनतम मज़दूरी दी जाती है, न ईएसआई-पीएफ़ जैसी सुविधाएँ और न उनके काम के घण्टे तय होते हैं। बच्चों की पढ़ाई से लेकर पोषण का काम, गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माओं की देखभाल का काम हो या तमाम सरकारी स्कीमों के लिए आँकड़ें इकट्ठा करने जैसे ज़रूरी काम हों, आँगनवाड़ी व आशाकर्मियों से लिए जाते हैं। मोदी सरकार के आने के बाद से तो इन योजनाओं के तहत काम कर रही महिलाकर्मियों की स्थिति तो और भी बदतर हुई है। लोगों ने जो थोड़े-बहुत हक़ हासिल किए थे, उसे भी ये सरकार ख़त्म कर रही है - जैसे आँगनवाड़ीकर्मियों की रिटायरमेण्ट की उम्र कम कर देना, आँगनवाड़ियों को निजी हाथों में सौंपने की शुरुआत करना, पुरानी पेंशन स्कीम को बन्द करना इत्यादि।

वैसे तो पिछले 11 सालों में मोदी सरकार ने मज़दूरों के हक़ों को छीनने के नित-नये रिकॉर्ड क़ायम किये हैं। बचे-खुचे श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके जो चार नये लेबर कोड लाये गये हैं उनके ज़रिये 8 घण्टे काम के नियम, यूनियन बनाने का अधिकार, कारख़ानों में सुरक्षा उपकरण आदि के अधिकार को ख़त्म कर दिया गया है। पक्के रोज़गार की व्यवस्था को ख़त्म करके ठेका प्रथा को बढ़ावा देने के काम को मोदी सरकार ने बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से आगे बढ़ाया है। मज़दूरों की हड़तालों और प्रदर्शनों को कुचलने लिए प्रशासन और पूँजीपतियों को खुली छूट दे दी गयी है। आज़ादी के बाद से केन्द्र व राज्य में चाहे जिस पार्टी की सरकार रही हो उन्होंने मज़दूरों के मेहनत की लूट-खसोट को बढ़ावा देते हुए मालिकों-पूँजीपतियों के पक्ष में ही नीतियाँ बनाने का काम किया है, मगर फ़ासीवादी मोदी सरकार ने तो मज़दूरों के हक़ों-अधिकारों पर दोगुनी तेज़ी के साथ हमले किये हैं।

शायद ही कोई यह न देख पाये कि मज़दूरों-मेहनतकशों-स्कीम वर्करों के हालात पिछले कुछ सालों में बदतर हुए हैं। मई दिवस के क्रान्तिकारियों को सही अर्थों में याद करने का आज यही मतलब हो सकता है कि हम अपनी वर्गीय एकजुटता कायम करें।

अपने आर्थिक माँगो पर संघर्ष के साथ-साथ मेहनतकशों की मुक्ति के लिए एक जुझारू क्रान्तिकारी आन्दोलन खड़ा करने की ओर आगे बढ़े क्योंकि जब तक मुनाफ़े पर टिकी यह पूँजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी, मज़दूर वर्ग के मेहनत की लूट जारी रहेगी। मेहनतकशों की वास्तविक मुक्ति तभी सम्भव है, जबकि इस मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त कर एक मानव-केन्द्रित व्यवस्था क़ायम की जाए, जहाँ उत्पादन के साधनों पर मेहनतकशों के सामहिक मालिकाने की व्यवस्था हो, राज-काज पर मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधि क़ाबिज़ हों और फ़ैसला लेने की ताक़त उनके हाथ में हो। मई दिवस के शहीद ऐसे ही समाज के निर्माण की नींव रख रहे थे।

मज़दूर दिवस के मौके पर हुई इस सभा में मज़दूर आन्दोलन के इतिहास से जुड़ी व क्रान्तिकारियों के जीवन से जुड़ी किताबों को महिलाकर्मियों से परिचित कराया गया। बातचीत के बाद लोगों ने अपने संघर्षों से जुड़े गीत भी प्रस्तुत किये और यह निश्चय किया कि शिकागो के शहीदों की क़ुर्बानी को व्यर्थ नहीं जाने देंगे, अपने तात्कालिक मुद्दों पर संघर्ष के साथ-साथ एक बेहतर मानव-केन्द्रित समाज को बनाने के लिए अग्रसर होंगे।

– बिगुल संवाददाता

बरगदवा, गोरखपुर के मज़दूरों ने मई दिवस को संकल्प दिवस के रूप में मनाया

"मैं जानता हूँ कि हमारे सपने इस साल या अगले साल पूरे होने वाले नहीं हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि आने वाले समय में, एक न एक दिन वे ज़रूर पूरे होंगे।"

– मई दिवस के नेता माइकल श्वाब

"मज़दूरों को ताक़त के दम पर दबा कर रखा जाता है और इसका जवाब भी ताक़त से ही दिया जाना चाहिए।"

– मई दिवस के नेता लुईस लिंग

पिछली 1 मई को (अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस) 'बिगुल मज़दूर दस्ता' और 'टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन' द्वारा गोरखपुर के बरगदवा में संकल्प दिवस के रूप में मनाया गया। कार्यक्रम की शुरुआत मई दिवस के शहीदों की तस्वीर पर माल्यार्पण और 'कारवाँ चलता रहेगा' गीत से किया गया। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के प्रसेन ने मई दिवस के इतिहास पर और इस इतिहास से मजदूरों की अनभिज्ञता, शासक वर्ग द्वारा इस विरासत को धूल-मिट्टी डालकर दबाने की साज़िश पर विस्तार से बात रखी। बिगुल के अम्बरीश ने सभा में बात रखते हुए कहा कि पूरे बरगदवा के इलाक़े में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के नेतृत्व में बहुत से हक़-अधिकार मज़दूरों ने हासिल किये थे। लेकिन मज़दूर उसे बचा सकने और अपने हक़ को बढ़ा सकने में सफल नहीं रहे। क्योंकि मालिक वर्ग के असली चरित्र, वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के संकट के चरित्र को नहीं समझ सके और अपनी एकजुटता बनाये नहीं रख सके। मज़दूर थोड़े से हक़ पाकर बैठ गये। वो यह नहीं समझ सके कि इस थोड़े हक़ को भी तभी बचाया जा सकता है जब वो और बड़ी एकजुटता के साथ और अधिकारों के लिए लड़ें। लेकिन मई दिवस पर हमें अतीत से सबक लेते हुए आगे के संघर्षों के लिए कमर कस लेने का संकल्प लेना है।

बिगुल से जुड़ी प्रीति ने अल्बर्ट पार्सन्स का जेल की कालकोठरी से लिखे बच्चों के नाम पत्र को पढ़कर अल्बर्ट पार्सन्स का अपने बच्चों से फिर कभी न मिल पाने की यन्त्रणा और दर्द का बयान किया और कहा कि फिर भी अल्बर्ट पार्सन्स ने अपने बच्चों को लोगों के लिए जीने और न्याय के इस संघर्ष के उसी रास्ते पर बढ़ने की सलाह दी।

'टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन' की तरफ से अजय मिश्रा ने बात रखी कि भितरघातियों और मालिकों की तरह-तरह की तिकड़मों के बावजूद बरगदवा के मज़दूर आज फिर से अपनी एकजुटता की जरूरत को गहराई से अहसास कर रहे हैं।

बिगुल के आकाश ने फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा लाए गये चार लेबर कोड पर बात रखी। आकाश ने बताया कि ये चार लेबर कोड वास्तव में काम के घण्टे बढ़ाने, मज़दूरी घटाने, यूनियन को बनाने की प्रक्रिया को बहुत कठिन बनाने और श्रम क़ानूनों को पूरी तरह मालिकों के पक्ष में करने के मज़दूर विरोधी क़ानून हैं। मज़दूरों का इसका पुरजोर विरोध करना चाहिए।

बिगुल के धर्मराज ने बात रखी कि आज मालिक, सरकार और प्रशासन के अलावा हमें अपने अन्दर के चार बड़े दश्मनों को पहचानने की ज़रूरत है। ये चार बड़े दुश्मन हैं-साम्प्रदायिकता, अन्धराष्ट्रवाद, जातिवाद और इलाक़ा/पेशा आधारित संकीर्णता। इनका इस्तेमाल पूँजीपति वर्ग और उनके प्रतिनिधि मज़दूर वर्ग की एकता को तोड़ने के लिए करते हैं। इसलिए मज़दूर वर्ग को अपने भीतर से इन गलत विचारों को जड़-मूल से खत्म करना होगा।

कार्यक्रम में हम मेहनतकश जगवालों से, रउरा शासना के बाटे न जबाब भाई जी, तस्वीर बदल दो दुनिया की और बड़ी-बड़ी कोठिया आदि गीत गाए गये और सफ़दर हाशमी का लिखा नाटक 'मशीन' खेला गया। कार्यक्रम का समापन मई दिवस के शहीद अमर रहे, काम के घण्टे 6 करो, दैनिक मज़दूरी 800 रुपये करो, ओवरटाइम का डबल रेट से भुगतान करो, फ़ासीवाद मुर्दाबाद, पूँजीवाद का नाश हो आदि नारों से हुआ।

बिगुल संवाददाता

मई दिवस की है ललकार, लड़कर लेंगे सब अधिकार!

मज़दूर साथियो, मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को जानो...

• प्रसेन

1 मई, अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस मेहनतकशों के कुर्बानी भरे संघर्ष और जीत की विरासत है। उस संघर्ष की निरन्तरता में एक अहम पड़ाव है, जो ग़ुलामी और शोषण के शुरू होने के साथ पैदा हुई थी और जिसे भविष्य में मज़दूरों के शोषण पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था के ख़ात्मे तक जाना है। आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम और आठ घण्टे मनोरंजन की माँग पर अकूत कुर्बानियों से जन्मे मई दिवस ने पूरी दुनिया के मज़दूरों की तरफ़ से मालिकों और उसकी सरकार के सामने यह स्पष्ट घोषणा की थी कि हम इन्सान हैं और हम मालिकों के मुनाफ़े की हवस पूरी करने के लिए जानवरों की तरह खटने को तैयार नहीं हैं। इस हक़ को हासिल करने के संघर्ष में अमेरिका के मज़दूरों और मज़दूर नेताओं ने सड़कों पर अपना ख़ून बहाया था और फाँसी का फन्दा चूमा था। मौत के सामने खड़े होकर भी वो अपनी माँगों पर दृढ़ थे और उन्होंने पूँजीपतियों और उसकी सरकार को चेतावनी दी थी कि यह जंगल की आग है जिसे वो तमाम कोशिशों के बाद भी नहीं बुझा पायेंगे। हमारे इन क्रान्तिकारी पुरखों का यह संकल्प पूरी दुनिया में 8 घण्टे के कार्यदिवस की क़ानूनी मान्यता के रूप में साकार हुआ। **1 मई का दिन पूरी दुनिया के मज़दूर वर्ग के लिए अपनी इस ऐतिहासिक जीत का जश्न मनाने और भविष्य में पूँजी की ग़ुलामी को हर-हमेशा के लिए इतिहास की कचरापेटी के हवाले करने हेतु अपनी तैयारियों को जाँचने-परखने और अपने संकल्प को ताज़ा करने का दिन बन गया।**

लेकिन वर्तमान समय का सबसे बुरा पहलू यह है कि मज़दूर अपने ही क्रान्तिकारी पुरखों के संघर्ष की इस शानदार विरासत से परिचित नहीं है। **बहुत से मज़दूरों के लिए यह बस छुट्टी या आराम करने या छूटे काम निपटाने का दिन बनकर रह गया है।** हालाँकि इसमें मज़दूरों की ग़लती नहीं है। क्योंकि पूँजीपतियों की मीडिया और उसकी सरकार दिन-रात मज़दूरों से उनकी क्रान्तिकारी विरासत को छिपाने की साज़िश करती है। क्रान्तिकारी ताक़तों के देश स्तर पर फैलाव की कमी तथा मज़दूरों की बुरी भौतिक परिस्थितियों से यह समस्या और बढ़ जाती है। दूसरी तरफ़ **मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी करने वाली सीटू, एटक, इंटक, एक्टू जैसी ट्रेड यूनियनों और फ़ासीवादी संघ परिवार से जुड़े भारतीय मज़दूर संघ द्वारा इसे रस्म अदायगी और विश्वकर्मा पूजा जैसे धार्मिक कार्यक्रम तक में बदल दिया गया है।**

मज़दूर वर्ग अपने क्रान्तिकारी अतीत को जाने बग़ैर वर्तमान समय में अपने संघर्ष को सही दिशा नहीं दे सकता और न ही अपनी मुक्ति की राह पर आगे क़दम बढ़ा सकता है। मई दिवस की विरासत को सहेजकर रखना हमारा फ़र्ज़ है और भविष्य के संघर्ष के लिये ऊर्जा का स्रोत भी। इसलिए मई दिवस की विरासत को हमें हर हाल में जानना चाहिये।

वास्तव में, पहले मज़दूरों के काम के घण्टे तय नहीं थे। 'सूर्योदय से सूर्यास्त' के नियम के मुताबिक़ उजाला होने से पहले मज़दूरों को कारख़ानों में पहुँच जाना पड़ता था और अँधेरा होने तक उनकी मेहनत को अच्छी तरह निचोड़कर ही मालिक जाने देते थे। मज़दूरों के काम के घण्टे 18 से 20 तक पहुँच जाते थे। काम के घण्टे बहुत अधिक होने का मज़दूरों के स्वास्थ्य और उम्र पर बहुत बुरा असर पड़ता था। ब्रिटेन के विभिन्न उद्योगों के सन्दर्भ में अलग-अलग जाँच-रिपोर्टों में मज़दूरों के बहुत-सी बीमारियों का शिकार होकर असमय मौत के मुँह में समा जाने का मूल कारण 'बहुत ज़्यादा देर तक' काम को बताया गया। 1806 में अमेरिका की सरकार ने फ़िलाडेल्फ़िया के हड़ताली मोचियों के नेताओं पर साज़िश के मुक़दमे चलाये थे जिनसे यह बात सामने आयी थी कि मज़दूरों से उन्नीस से बीस घण्टे तक काम करवाया जा रहा है। यही बात 1834 में न्यूयार्क में नानबाइयों की हड़ताल में सामने आयी थी।

इस अमानवीय कार्यदिवस के ख़िलाफ़ उन्नीसवीं सदी के दूसरे और तीसरे दशक में आन्दोलन और हड़तालों की शुरुआत हो चुकी थी। कई जगहों पर दस घण्टे के कार्यदिवस की माँग ने आन्दोलन का स्वरूप ले लिया था। 1848 से पहले लियॉन शहर में औद्योगिक दंगे, सिलेसियाई बुनकरों का विद्रोह और इंग्लैण्ड के मज़दूरों का माँगपत्रक आन्दोलन इसके मुख्य उदाहरण हैं। कई जगहों पर जब यह माँग मान ली गयी तो मज़दूरों ने 8 घण्टे काम की माँग उठाना शुरू कर दिया। अमेरिका में 8 घण्टे के काम की माँग के सन्दर्भ में मार्क्स ने लिखा कि-"..दास प्रथा की मृत्यु हो जाने पर तुरन्त ही एक नए जीवन का उदय हुआ। गृह-युद्ध का पहला फल यह हुआ कि आठ घण्टे काम का आन्दोलन शुरू हो गया, जो रेल के इंजन की तूफ़ानी रफ़्तार से अटलांटिक महासागर से प्रशान्त महासागर तक और न्यू इंगलैण्ड से कैलिफॉर्निया तक फैल गया।"

वह संघर्ष जिससे 'मई दिवस' का जन्म हुआ था, उसके पहले 1866 में अमेरिका में 'नेशनल लेबर यूनियन' ने अपने स्थापना समारोह में यह प्रतिज्ञा ली थी कि-"इस देश के श्रमिकों को पूँजीवादी ग़ुलामी से मुक्त करने के लिए, वर्तमान समय की पहली और सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि अमेरिका के सभी राज्यों में आठ घण्टे के कार्यदिवस को सामान्य कार्यदिवस बनाने का क़ानून पास कराया जाए। जब तक यह लक्ष्य पूरा नहीं होता, तब तक हम अपनी पूरी शक्ति से संघर्ष करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं।" 'आठ घण्टा दस्तों' का निर्माण 'नेशनल लेबर यूनियन' द्वारा किये गये आन्दोलन का ही परिणाम था। इसी वर्ष सितम्बर में पहले इण्टरनेशनल की जेनेवा कांग्रेस में आठ घण्टे के कार्यदिवस की माँग निम्न रूप में दर्ज़ हुई-"काम के दिन की वैध सीमा तय करना एक प्राथमिक शर्त है जिसके बिना मज़दूर वर्ग की स्थिति में सुधार या उसकी मुक्ति का कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता...यह कांग्रेस आठ घण्टे के कार्यदिवस का प्रस्ताव रखती है।" जेनेवा कांग्रेस ने इस माँग को पूरी दुनिया के मज़दूरों के आम मोर्चे के रूप में माना।

वास्तव में, मई दिवस का जन्म 'द अमेरिकन फेडरेशन ऑफ़ लेबर' के 7 अक्टूबर 1884 में इस संगठन के चौथे सम्मेलन के उस आग्रह/प्रस्ताव का परिणाम था, जिसके तहत 1 मई 1886 से 8 घण्टे को वैध कार्यदिवस मानने की बात की गयी थी। फेडरेशन के 1885 के सम्मेलन में आने वाले साल की पहली मई को इस माँग के लिए हड़ताल पर जाने का संकल्प दोहराया गया। अपने संकल्प के मुताबिक़ मज़दूर पहली मई 1886 की महान हड़ताल की तैयारियों में जुट गये थे, लेकिन वास्तव में 1884 से 1885 में ही हड़तालों में जबरदस्त बढ़ोत्तरी हो गयी थी। 1885 में हड़तालों में भाग लेने वाले मज़दूरों की संख्या 250000 थी जो 1886 में बढ़कर 600000 हो गयी। इस आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसने अकुशल और असंगठित मज़दूरों को भी हड़ताल में खींच लिया था।

पहली मई, 1886 को अमेरिका के विभिन्न शहरों में शानदार हड़तालें हुईं। जबकि शिकागो जो कि हड़ताल का केन्द्र था, पूरा शहर ही थम गया। शिकागो की सड़कों पर मज़दूरों का सैलाब उमड़ पड़ा। मज़दूर वर्ग ने न केवल अपनी वर्ग एकता की शक्ति का इतना व्यापक और मज़बूत असर महसूस किया बल्कि मज़दूरों की एकजुट शक्ति को पूँजीपति वर्ग ने भी महसूस किया और उसके घुटने काँप गये। अमेरिका के मज़दूरों के 8 घण्टे काम का नारा पूरी दुनिया में गूँज उठा। मज़दूर वर्ग के इस ऐतिहासिक उभार को देखने के बाद मज़दूर वर्ग की मुक्ति का सिद्धान्त रचने वाले कार्ल मार्क्स के साथी एंगेल्स ने लिखा कि- "काश यह दिन देखने के लिए मार्क्स ज़िन्दा होते!"

इसके पहले कई देशों में 12 घण्टे या 10 घण्टे के काम के नियम बने थे। लेकिन उन नियमों में इतने छेद थे कि पूँजीपति वर्ग आसानी से मज़दूरों को 15-16 घण्टे तक खटा सकता था। लेकिन अमेरिका में 1 मई 1886 की हड़ताल में मज़दूरों की जुझारू एकजुटता से पूँजीपति वर्ग के सामने यह बात स्पष्ट हो गयी कि जल्द ही कुछ बड़ा दमनात्मक क़दम न उठाया गया तो 12 से 18 घण्टे के काम के दिन लद जायेंगे। मेहनत की लूट में कमी आने के डर से बौखलाये अमेरिकी पूँजीपति वर्ग के पक्ष में अमेरिकी सरकार ने "लोकतन्त्र" का लबादा उतार फेंका। पुलिस, न्यायपालिका, ख़ुफ़िया विभाग श्रम की लूट को निर्बाध रखने के लिए मज़दूरों के बर्बर दमन पर उतर आया।

1 मई के विशाल प्रदर्शन के बाद 3 मई को जब मैकार्मिक हार्वेस्टिंग मशीन कम्पनी के मज़दूरों ने दो महीने से चल रहे लॉक आउट के विरोध में और आठ घण्टे काम के समर्थन में सभा का आयोजन किया तो निहत्थे मज़दूरों पर पुलिस द्वारा गोलियाँ चलायी गयीं। जिसमें 6 मज़दूर मारे गये और बहुत से घायल हुए। इस बर्बर पुलिस दमन के ख़िलाफ़ चार मई की शाम को शहर के मुख्य बाज़ार 'हे मार्केट चौक' में एक जनसभा रखी गयी। मीटिंग रात आठ बजे शुरू हुई। क़रीब तीन हज़ार लोगों के बीच मज़दूर नेता पार्सन्स और स्पाइस ने आह्वान किया कि वे एकजुट और संगठित रहकर पुलिस दमन का मुक़ाबला करें। मीटिंग ख़त्म होने वाली थी कि 180 पुलिसवाले वहाँ पहुँच गये। मज़दूर नेता पुलिस को बताने की कोशिश कर रहे थे कि यह शान्तिपूर्ण सभा है, कि इसी बीच पुलिस के एक एजेण्ट ने भीड़ में बम फेंक दिया। बम विस्फोट में चार मज़दूर और सात पुलिस वाले मारे गये। इस घटना के बाद मज़दूरों पर पुलिस ने हमला बोल दिया। पूरे शिकागो में पुलिस ने मज़दूर बस्तियों, मज़दूर संगठनों के दफ्तरों, छापाखानों आदि में जबरदस्त छापे डाले। सैकड़ों लोगों को मामूली शक पर पीटा गया और बुरी तरह टॉर्चर किया गया।

सात मज़दूर नेताओं आगस्ट स्पाइस, जार्ज एंजेल, एडाल्फ फिशर, सैमुअल फील्डेन, माइकेल श्वाब, लुइस लिंग्ग और आस्कर नीबे को गिरफ़्तार कर लिया गया। अल्बर्ट पार्सन्स को पुलिस नहीं पकड़ पायी थी लेकिन मुक़दमे वाले दिन वे ख़ुद ही अपने मज़दूर साथियों के साथ

(पेज 8 पर जारी)

मई दिवस की है ललकार, लड़कर लेंगे सब अधिकार!

(पेज 7 से आगे)

कटघरे में खड़े होने के लिए अदालत पहुँच गये।

पूँजीवादी न्याय के लम्बे नाटक के बाद 20 अगस्त 1887 को शिकागो की अदालत ने अपना फैसला दिया। सात लोगों को सज़ाए-मौत और एक (नीबे) को पन्द्रह साल कैद बामशक्कत की सज़ा दी गयी। 11 नवम्बर 1887 को 4 मज़दूर नेता अल्बर्ट पार्सन्स, आगस्ट स्पाइस, जार्ज एंजेल, एडाल्फ फिशर को फाँसी दे दी गयी।

सारे अमेरिका और तमाम दूसरे देशों में इस क्रूर फैसले के ख़िलाफ़ भड़क उठी जनता के ग़ुस्से के दबाव में अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने पहले तो अपील मानने से इन्कार कर दिया लेकिन बाद में इलिनाय प्रान्त के गर्वनर ने फील्डेन और श्वाब की सज़ा को आजीवन कारावास में बदल दिया। जबकि 10 नवम्बर 1887 को सबसे कम उम्र के नेता लुइस लिंग्ग ने फाँसी से पहले कालकोठरी में आत्महत्या कर ली थी।

11 नवम्बर का दिन मज़दूर वर्ग के इतिहास में काला शुक्रवार था। अफ़सरों ने मज़दूर नेताओं की मौत का तमाशा देखने के लिए शिकागो के दो सौ अमीरों को बुला रखा था। लेकिन मज़दूरों को डर से काँपते हुए देखने की उनकी तमन्ना धरी की धरी रह गयी। वहाँ मौजूद एक पत्रकार ने बाद में लिखा : ''चारों मज़दूर नेता क्रान्तिकारी गीत गाते हुए फाँसी के तख्ते तक पहुँचे और शान के साथ अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो गये। फाँसी के फन्दे उनके गलों में डाल दिये गये। स्पाइस का फन्दा ज़्यादा सख़्त था, फिशर ने जब उसे ठीक किया तो स्पाइस ने मुस्कुराकर धन्यवाद कहा। फिर स्पाइस ने चीखकर कहा, 'एक समय आयेगा जब हमारी ख़ामोशी उन आवाज़ों से ज़्यादा ताक़तवर होगी जिन्हें तुम आज दबा रहे हो।...'

फिर पार्सन्स ने बोलना शुरू किया, 'मेरी बात सुनो... अमेरिका के लोगो! मेरी बात सुनो... जनता की आवाज़ को दबाया नहीं जा सकेगा...' लेकिन इसी समय तख्ता खींच लिया गया।'' 13 नवम्बर को चारों मज़दूर नेताओं की शवयात्रा ऊपर से शान्त लेकिन इस अन्याय के ख़िलाफ़ सीने में क्रोध की ज्वाला लिए मज़दूरों की एक विशाल रैली में बदल गयी। छह लाख से भी ज़्यादा लोग इन नायकों को आख़िरी सलाम देने के लिए सड़कों पर उमड़ पड़े।

1889 में द्वितीय इण्टरनेशनल ने, जो कि दुनियाभर की कम्युनिस्ट व मज़दूर पार्टियों का अन्तरराष्ट्रीय मंच था, पूरी दुनिया में 1 मई को अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के रूप में मनाने का फ़ैसला किया क्योंकि यह मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का एक प्रतीक बन चुका था। आने वाले दिनों में मज़दूर आन्दोलन के दबाव में दुनिया के तमाम देशों समेत भारत में भी काम के घण्टे 8 को क़ानूनी मान्यता दी गयी।

आठ घण्टे के कार्यदिवस की माँग को बुलन्द करने के साथ-साथ अमेरिका के मज़दूरों ने अन्य महत्वपूर्ण राजनीतिक माँगों को उठाया, जो उनकी राजनीतिक चेतना के महत्वपूर्ण विकास को दर्शाता है। ये नारे थे-''अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग की एकता ज़िन्दाबाद'', ''साम्राज्यवादी युद्ध और औपनिवेशिक उत्पीड़न का विरोध करो'', राजनीतिक क़ैदियों को मुक्त करो'', ''सार्वभौमिक मताधिकार दो'', ''आन्दोलन करने का अधिकार दो'', ''मज़दूरों को राजनीतिक और आर्थिक संगठन बनाने का अधिकार दो''।

मई दिवस की इस विरासत को जानने के बाद हमें यह सोचना है कि हमने अपने क्रान्तिकारी पुरखों के संघर्ष को आगे बढ़ाया है या हमने वो भी खो दिया है जो उन्होंने अपनी शहादत देकर आने वाली पीढ़ियों को दिया था। अमेरिका के मज़दूरों ने जब आठ घण्टे के काम की माँग की थी तब उस समय तकनीक और मशीनें आज की मशीनों और तकनीक के मुक़ाबले बहुत पिछड़ी हुई थीं। अब जबकि मशीनें और तकनीक इतनी उन्नत हो चुकी हैं कि काम व समूचे माल के निर्माण को छोटे-छोटे हिस्सों में तोड़कर काम को सरल व तेज़ रफ़्तार से किया जाना सम्भव बना दिया गया है। तब मज़दूर की मज़दूरी का हिस्सा घटता जा रहा है और काम के घण्टे बढ़ते जा रहे हैं। 1984 में जहाँ कुल उत्पादन लागत का 45 प्रतिशत हिस्सा मज़दूरी के रूप में दिया जाता था वो 2010 तक घटकर 25 प्रतिशत रह गया। संगठित क्षेत्र में पैदा होने वाले हर 10 रुपये में मज़दूर वर्ग को केवल 23 पैसे मिलता है। **ऑटो सेक्टर में एक विश्लेषण के अनुसार तकनीकी विकास के हिसाब से ऑटो सेक्टर का मज़दूर 8 घण्टे के कार्यदिवस में अपनी मज़दूरी के बराबर का मूल्य मात्र 1 घण्टे 12 मिनट में पैदा कर देता है, जबकि 6 घण्टे 48 मिनट मज़दूर बिना भुगतान के काम करता है। मज़दूरों की मेहनत की इसी लूट से एक ओर ग़रीबी और दूसरी ओर पूँजी का अम्बार खड़ा होता है।**

ऑक्सफैम की रिपोर्ट मुताबिक़, भारत में ग़रीबों की संख्या 23 करोड़ है जबकि दूसरी ओर वर्ष 2020 में अरबपतियों की संख्या 102 थी जो 2022 में बढ़कर 166 हो गयी।1981 में भारत के सबसे ऊपर के 10 प्रतिशत अमीरों की सम्पदा देश की कुल सम्पदा की 45 फ़ीसदी थी जो 2012 में बढ़कर 63 फ़ीसदी और 2022 में बढ़कर 80 फ़ीसदी से भी अधिक हो गयी। सबसे ऊपर के 1 प्रतिशत धन्नासेठों के पास देश की 40 फ़ीसदी से भी अधिक सम्पदा इकट्ठी हो गयी है जबकि नीचे से 50 प्रतिशत लोगों के पास कुल सम्पदा का मात्र 3 फ़ीसदी है।

आज़ादी के बाद से केन्द्र व राज्य में चाहे जिस पार्टी की सरकार रही हो, सभी ने पूँजीपति वर्ग के पक्ष में मज़दूरों के मेहनत की लूट का रास्ता ही सुगम बनाया है। **लेकिन 1990-91 में आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद और ख़ास-कर मोदी के सत्तासीन होने के बाद से मज़दूरों पर चौतरफ़ा हमला बोल दिया गया है। चार नए लेबर कोड के ज़रिये मज़दूरों के 8 घण्टे काम के नियम, यूनियन बनाने, कारख़ानों में सुरक्षा उपकरण आदि के अधिकार को ख़त्म कर दिया गया है।** विरोध प्रदर्शनों को कुचलने लिए प्रशासन और पूँजीपतियों को वैध-अवैध तरीक़ा अपनाने की खुली छूट दे दी गयी है। **जर्जर ढाँचे और सुरक्षा उपकरणों की कमी के चलते कारख़ाने असमय मृत्यु और अपंगता की जगहों में तब्दील हो गये हैं। हवादार खिड़कियाँ, ऊँची छत, दुर्घटना होने पर त्वरित बचाव के साधन नहीं हैं।** अत्याधुनिक मशीनों पर तेज़ गति से काम करने, अधिक काम से होने वाली थकान और मालिकों द्वारा स्पीड कम न होने देने के लिए सेंसर हटा देने आदि से दुर्घटनाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी है। असगंठित क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों को न तो ई.एस.आई. की कोई सुविधा है न ही बीमा आदि की। **'श्रम और रोज़गार मन्त्रालय' के आँकडों के अनुसार 2014 से 2016 के बीच पूरे देश के कारख़ानों में हर दिन 3 के औसत से 3562 मज़दूरों की दुर्घटनाओं में मौत हो गयी, जबकि इस अवधि में 51000 से अधिक मज़दूर घायल हुये।** इन आँकडों में अनौपचारिक क्षेत्र में होने वाली बहुत-सी दुर्घटनायें शामिल नहीं हैं।

ग्रामीण मज़दूरों की स्थिति और भी बुरी है। खेतों, भट्ठों, भवन निर्माण आदि में काम करने वाले बहुत से मज़दूर 250 से 400 रुपये तक के रेट से काम करने पर मजबूर हैं। जो भी श्रम क़ानून हैं उनके भी दायरे से ग्रामीण मज़दूर बाहर हैं। **'मनरेगा'** के तहत पूरे देश में पंजीकृत लगभग 13 करोड़ मनरेगा मज़दूरों की दैनिक मज़दूरी अलग-अलग राज्य सरकारों द्वारा 200 से 250 रुपये तक निर्धारित किया गया है। 100 दिन के 200-250 रुपये की दर से आय में किसी परिवार का गुज़ारा चल सकने की बात सोचना ही मूर्खता है। जबकि स्थिति यह है कि 100 दिन की जगह 30-40 दिन से ज़्यादा काम मिल ही नहीं रहा है। मोदी सरकार द्वारा इस योजना में किये जा रहे ख़र्च को निरन्तर घटाया जा रहा है। इसी तरह **गाँवों-शहरों में काम करने वाली आँगनवाड़ी, आशा जैसे स्कीम वर्कर्रों की बुरी स्थिति है।** पूरे देश में लगभग 39 लाख स्कीम वर्कर्स काम कर रहे हैं। नियमित और अतिआवश्यक काम करने वाले इन स्कीम वर्करों को सरकार अपना कर्मचारी नहीं मानती और बहुत मामली-सा मेहनताना देती है। इसी तरह जनता के ख़ून-पसीने की कमाई से खड़े हुए **सरकारी विभागों को एक—एक कर मोदी सरकार द्वारा निजीकरण की भेंट चढ़ाया जा रहा है। पेंशन की पुरानी स्कीम 2005 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार में ही ख़त्म कर दी गयी थी। सरकारी विभागों के खाली पदों को ख़त्म किया जा रहा है। कर्मचारियों की संख्या कम होने से कर्मचारियों पर काम का बोझ लगातार बढ़ाया जा रहा है।**

कुल मिलाकर, हर तरह की मेहनत करने वालों पर मोदी सरकार का कहर बरस रहा है। **लेकिन भाजपा के अलावा कांग्रेस, सपा, बसपा, आम आदमी पार्टी, सीपीआई, सीपीएम, लिबरेशन जैसी पार्टियों और इनकी यूनियनों से किसी तरह की उम्मीद करना व्यर्थ है। बड़े-छोटे पूँजीपतियों के चन्दों से चलने वाली इन पार्टियों की अदला-बदली से मज़दूरों की ज़िन्दगी बेहतर होने की जगह बदतर ही हुई है।**

मज़दूरों को पूँजीपति वर्ग की पार्टियों और उनकी ट्रेड यूनियनों के भ्रमजाल से मुक्त होकर सबसे पहले यह बात समझनी होगी कि आख़िर उनकी मेहनत की लूट को सम्भव कौन बनाता है? वास्तव में, पूँजीपति वर्ग की लूट को सरकार, उसकी मशीनरी, पुलिस-फ़ौज आदि सम्भव बनाती है। **जब तक यह पूँजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक मज़दूर वर्ग मेहनत की लूट से मुक्ति नहीं पा सकता। मज़दूर वर्ग की वास्तविक मुक्ति तभी सम्भव है, जबकि इस मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त कर उत्पादन के साधनों पर मेहनतकशों के सामहिक मालिकाने की व्यवस्था क़ायम हो, राज-काज पर मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधि क़ाबिज़ हों और फ़ैसला लेने की ताक़त उनके हाथ में हो।** शहीदेआज़म भगतसिंह जैसे महान क्रान्तिकारी ऐसे ही समाज के निर्माण के लिए लड़ते हुए शहीद हुए थे।

मज़दूर वर्ग को अपने क्रान्तिकारी अतीत को जानना होगा, अपनी वर्गीय एकता की ताक़त को समझना होगा, पूँजीवादी व्यवस्था और उसके प्रतिनिधियों के हथकण्डों की समझ हासिल करनी होगी। पूँजीवादी/संशोधनवादी यूनियनों के द्वारा दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाए जाने और उसे भी खोते जाने से कमज़ोर हुए आत्मविश्वास को फिर से हासिल करना होगा। मज़दूरों को यह बात समझनी होगी कि पूँजीपति वर्ग मुनाफ़े की गिरती दर को बरक़रार रखने के लिए वर्तमान समय में फ़ासीवादी भाजपा व संघ परिवार की शरण में गया है। फ़ासीवादी भाजपा सरकार एक तरफ़ मज़दूरों के हक़ों को छीनती जा रही है दूसरी ओर उनके हक़ में बोलने वालों का निर्ममता से दमन कर रही है। **मज़दूर वर्ग को अपने वर्गीय हितों के आधार पर एकजुट होने से रोकने के लिए फ़ासीवादी ताक़तों ने पूरे देश को साम्प्रदायिक उन्माद में झोंक दिया है। इसके अलावा जाति, क्षेत्र, भाषा, अन्धराष्ट्रवाद की विभाजनकारी राजनीति को मज़दूरों की वर्गीय एकता को बनने से रोकने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। इसलिए मज़दूर वर्ग को इस साज़िश को समझना होगा और अपने वर्ग हितों के आधार पर राजनीतिक तौर पर लामबन्द होना होगा।**

मज़दूर वर्ग को पूँजी की सत्ता को ध्वस्त करने की निर्णायक लड़ाई तक पहुँचने के लिए उन अधिकारों के लिए संगठित होना होगा, जिसको देने की बात यह पूँजीवादी व्यवस्था और संविधान करता है, लेकिन देता नहीं। इन अधिकारों को हासिल करने और अपने हक़ों को बढ़ाने की लड़ाई के अनुभवों से और क्रान्ति के विज्ञान के ज़रिये ही मज़दूर यह भी सीख सकेंगे कि अपने दूरगामी लक्ष्य को कैसे हासिल करना है।

रस्म-अदायगी से आगे बढ़कर मज़दूर वर्ग के अधिकारों पर असली जुझारू लड़ाई के लिए जागो! गोलबन्द हो! संगठित हो!

(पेज 1 से आगे)

हफ़्ते में 48 घण्टे काम के अधिकार को स्वीकार किया, हालाँकि यह क़ानून उतने सख़्त तौर पर हर दिन के काम के घण्टों को 8 घण्टे पर सीमित नहीं करता था और न ही यह हमारे देश में मौजूद अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र के उद्योगों पर कभी ढंग से लागू किया गया। लेकिन इसके बावजूद संगठित व औपचारिक क्षेत्र के कारख़ानों में यह क़ानून कमोबेश लागू करने को पूँजीपति वर्ग मजबूर हुआ। यह मज़दूर वर्ग के जुझारू आन्दोलन का ही नतीजा था।

आज़ादी के तत्काल बाद हमारे देश में जनता की ही संचित बचत और सार्वजनिक ऋण के बूते (जिसे जनता ही करों के ज़रिये भरती है) पब्लिक सेक्टर उद्यमों का एक विराट ढाँचा खड़ा किया गया। वजह यह थी कि उस समय देश का निजी पूँजीपति वर्ग देश के पूँजीवादी विकास को तेज़ गति से बढ़ाने के लिए आवश्यक पूँजी निवेश करने में सक्षम नहीं था। नतीजतन, "समाजवाद" का नारा उछालकर जनता का समर्थन, उसकी बचत और धन को बटोरा गया और विशाल संगठित सार्वजनिक क्षेत्र खड़ा किया गया। 1980 का दशक आते-आते देश का पूँजीपति वर्ग अब जनता को लूटकर बटोरे गये अकूत मुनाफ़े के बूते आर्थिक तौर पर इतना ताक़तवर हो चुका था कि अब वह समूची अर्थव्यवस्था में निजीकरण चाहता था, सरकारी विनियमन की समाप्ति चाहता था, "लाइसेंस राज – कोटा राज" से मुक्ति चाहता था, संक्षेप में, वह मज़दूर वर्ग की लूट और शोषण पर लगे हर प्रकार के राजकीय विनियमन को और ट्रेड यूनियनों की शक्ति को समाप्त करना चाहता था। पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी के रूप में भारत में पूँजीवादी सरकार ने क्रमिक प्रक्रिया में यह काम किया भी।

पहले 1980 के दशक में इन्दिरा गाँधी और राजीव गाँधी ने पूँजीपति वर्ग को धीरे-धीरे "धन्धा करने की सहूलियत" देने की शुरुआत की और फिर 1991 में कांग्रेस की नरसिंह राव सरकार ने इस प्रक्रिया को ज़ोर-शोर ने 'नयी आर्थिक नीतियों' के साथ आगे बढ़ाया। 1998 से 2004 के दौरान भाजपा की वाजपेयी सरकार ने मज़दूरों की पूँजीपतियों द्वारा लूट पर लगी रोकों को हटाने का काम कांग्रेस सरकार से भी तेज़ी से किया। उसी समय वाजपेयी सरकार ने वह श्रम आयोग गठित किया था जिसकी सिफ़ारिशों को लागू करते हुए आज मोदी सरकार नये लेबर कोड ला रही है। इसके बाद 2004 से 2014 तक वाजपेयी सरकार के दौरान हुई अन्धाधुन्ध पूँजीवादी लूट से पैदा जन असन्तोष को कुछ शान्त करने के लिए पहले वर्ष में माकपा व भाकपा जैसे मज़दूर वर्ग के ग़द्दार संसदीय वामपन्थियों के सहयोग-सहकार से और उसके बाद उसके बिना ही कांग्रेस-नीत संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार ने कुछ दिखावटी कल्याणवाद किया, कुछ सामाजिक सुरक्षा आदि के दिखावटी क़ानून लाये, लेकिन वास्तव में पूँजीपतियों को भारी छूटें देना जारी रखा।

2014 से मोदी की फ़ासीवादी सरकार ने नवउदारवादी और मज़दूर-विरोधी नीतियों को लागू करने की गति के सारे रिकार्ड ध्वस्त कर दिये हैं। **नये लेबर कोडों को क्रमिक प्रक्रिया में लागू करने की पूरी तैयारी की जा चुकी है। इसके लिए मज़दूर पक्ष और पूँजीपति पक्ष के तर्क तैयार करने का काम क्रमश: भाजपा की ट्रेड यूनियन भारतीय मज़दूर संघ और पूँजीपतियों के मंच सी.आई.आई. को दिया गया है। सुनने में आ रहा है कि पहले इसे 500 या उससे अधिक मज़दूरों के कारख़ानों पर लागू किया जायेगा, फिर 300 या उससे अधिक मज़दूरों के कारख़ानों पर और उसके बाद 300 से कम मज़दूरों के कारख़ानों पर। इसके ज़रिये, व्यवहारत:, आठ घण्टे के कार्यदिवस का क़ानून नष्ट कर दिया जायेगा और "काम करने की स्वतन्त्रता" के नाम पर 10-12 घण्टे काम करवाने को आम बात बना दिया जायेगा।** इसके अलावा, 'जब चाहो काम पर रखो, जब चाहे लात मारकर बाहर कर दो' यानी 'हायर एण्ड फ़ायर' की नीति को क़ानूनी जामा पहना दिया जायेगा। अप्रेण्टिस, ट्रेनी, आदि के नाम पर ठेका प्रथा को और भी ज़्यादा व्यापक पैमाने पर लागू किया जायेगा। यूनियन बनाने को बेहद मुश्किल बना दिया जायेगा और 'बाहरी' तत्वों को यूनियन में पदाधिकारी या सदस्य बनाने पर रोक लगाकर यूनियनों को उनके नेतृत्व और राजनीतिक शक्ति से वंचित कर दिया जायेगा। ये हैं फ़ासीवादी मोदी सरकार के मंसूबे। इसका नतीजा यह होगा कि मज़दूर वर्ग ने पिछले 100 सालों में जो हक़ जुझारू और बहादुरी भरे संघर्षों से हासिल किये हैं, उन्हें क्रमिक प्रक्रिया में छीन लिया जायेगा। नतीजा यह होगा कि अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र भारतीय उद्योगों में और भी ज़्यादा विस्तारित होगा। यह मज़दूरी को नीचे गिरायेगा और मन्दी से बिलबिला रहे पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की औसत दर को बढ़ाकर उसे कुछ राहत देगा। असल में, मन्दी के दौर में पूँजीपति वर्ग जो एकमत से मोदी की फ़ासीवादी सरकार को समर्थन दे रहा है, उसके पीछे का असल कारण यही है : फ़ासीवादी मोदी में ही उसे वह नेता दिखता है जो हर प्रकार से मज़दूर व जन प्रतिरोध को निर्ममता से कुचलकर मुनाफ़े के रथ के चक्के के रास्ते में आने वाली हर बाधा पर पाटा चला सकता है। इसके लिए वह जनता को धर्म के उन्माद में बहाकर उसकी एकता को तोड़ सकता है, उसे बाँट सकता है।

वास्तव में अनौपचारिकीकरण की यह प्रक्रिया 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध से ही शुरू हो चुकी थी। उसके पहले भी भारत में एक विशाल अनौपचारिक क्षेत्र मौजूद था। लेकिन 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध से यह लगातार बढ़ता रहा है और आज स्थिति यह है कि भारत में मैन्युफैक्चरिंग में करीब 70 से 75 फ़ीसदी मज़दूर अनौपचारिक व असंगठित मज़दूर हैं। अगर भारत की समूची अर्थव्यवस्था की बात करें तो उसमें क़रीब 93 फ़ीसदी कामगार अनौपचारिक और असंगठित हैं। ये ही वे मज़दूर भाई और बहन हैं जिन्हें न तो आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार हासिल है, न कोई सामाजिक सुरक्षा हासिल है, न काम की जगह पर सुरक्षा के इन्तज़ामात हासिल हैं और न ही स्वैच्छिक व डबल रेट भुगतान वाला ओवरटाइम, ईएसआई, पीएफ़ आदि। इनकी स्थितियाँ नये तकनोलॉजिकल व सामाजिक सन्दर्भ में कुछ मायने में उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के मज़दूरों जैसी ही हो गयी है। देश के कल-कारख़ानों, खानों-खदानों और खेतों-खलिहानों में काम करने वाले क़रीब 60 करोड़ मज़दूरों को छोड़ भी दिया जाय तो बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में सूट-टाई पहनकर काम करने वाले मानसिक मज़दूर भी 10-12 घण्टे काम कर रहे हैं! इसके अलावा, तथाकथित 'गिग अर्थव्यवस्था' के नाम पर जो पूर्ण रूप में अरक्षित प्लेटफ़ॉर्म आधारित मज़दूर पैदा हुए हैं, उनके काम के घण्टों की तो कोई सीमा ही नहीं है। उनकी मालिक कम्पनियाँ इन मज़दूरों का मालिक होने से इन्कार करती हैं और उन्हें मज़दूर मानने से भी इन्कार करती हैं। वे उन्हें "पार्टनर" बोलकर उनकी मज़दूर पहचान को छिपाती हैं क्योंकि उन्हें मज़दूर मानते ही उन्हें अपने आपको मालिक भी मानना पड़ेगा और किसी न किसी रूप में किसी क़ानून के विनियमन के दायरे में आना पड़ेगा। आज ये कम्पनियाँ बिना किसी क़ानूनी तानेबाने के काम कर रही हैं और खुलकर बेरोक-टोक मज़दूरों को निचोड़ रही हैं। इनमें स्विगी, ज़ोमैटो, इंस्टामार्ट आदि जैसी दर्जनों कम्पनियाँ आती हैं।

खेती के क्षेत्र में खेतिहर मज़दूरों की स्थिति भी भयंकर है। इन कार्यस्थितियों को भी विनियमित करने वाला कोई क़ानून भारत में मौजूद नहीं है। नतीजतन, धनी किसान, कुलक और पूँजीवादी भूस्वामी फार्मर इनसे जमकर काम करवाते हैं। साथ ही यहाँ जाति का कारक भी काम करता है। चूँकि खेतिहर मज़दूरों की लगभग आधी आबादी दलित जातियों से आती है इसलिए इनकी मज़दूरी मार लिया जाना, मज़दूरी माँगने पर इनके हाथों पर ट्रैक्टर चढ़ा देना, इन्हें जला देना देश के गाँवों में आम बात है। इस जातिगत उत्पीड़न के चलते ये भारत के मज़दूर वर्ग का अतिशोषित हिस्सा भी बनते हैं। याद रखें, वे ही धनी किसान, कुलक और फ़ार्मर जो अपने लिए लाभकारी मूल्य यानी एम.एस.पी. हेतु क़ानून बनाने की माँग कर रहे हैं, वे खेतिहर श्रम को विनियमित करने, खेतिहर मज़दूरों को आठ घण्टे के कार्यदिवस व अन्य श्रम अधिकार देने वाले क़ानून को बनाने का पुरज़ोर विरोध करते हैं! लेकिन ये अपनी माँग को ऐसे पेश करते हैं, मानो वह पूरी हो गयी तो खेतिहर मज़दूरों को भी फ़ायदा होगा और इसलिए वे खेतिहर मज़दूरों से अपनी पूँजीवादी किसानी की माँग के लिए समर्थन माँगते हैं! अगर पूँजीपति का मुनाफ़ा बढ़ने से मज़दूर की मज़दूरी बढ़ती तब तो कारख़ानों में भी मज़दूरों को पूँजीपति का मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए काम करना चाहिए! ऐसी बात कोई मूर्ख ही कर सकता है। हम मज़दूर जानते हैं कि पूँजीपति का मुनाफ़ा मज़दूरों की क़ीमत पर ही बढ़ता है। इसलिए समझदार मज़दूर, चाहे वह खेतों में काम करे, खदानों में काम करे या कल-कारख़ानों में काम करे, पूँजीपति वर्ग के इस झाँसे में नहीं आता कि उसका मुनाफ़ा बढ़ने से मज़दूरों को फ़ायदा होगा।

बहरहाल, **देश के 90 फ़ीसदी मज़दूरों के काम के हालात और जीवन के हालात पर एक नज़र डालते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मज़दूर वर्ग ने अपने जुझारू और साहसी संघर्षों से पिछले 100 वर्षों से ज़्यादा समय में जो कुछ हासिल किया था, वह पूँजीपति वर्ग ने विशेष तौर पर पिछले 50 वर्ष में क्रमिक प्रक्रिया में छीन लिया है।** यह हमारे देश का ही नहीं बल्कि दुनिया के अधिकांश पूँजीवादी देशों का हाल है।

ऐसे में, हमें अपने हक़ों के लिए नये सिरे से जागने, गोलबन्द और संगठित होने की आवश्यकता है। लेकिन ऐसी कोई परियोजना हाथ में लेने से पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारे दुश्मन कौन हैं। निश्चित तौर पर, हमारा दुश्मन पूँजीपति वर्ग है। लेकिन उसके ख़िलाफ़ हमारे संघर्ष से जान को खींचकर निकाल लेने वाला एक

(पेज 10 पर जारी)

रस्म-अदायगी से आगे बढ़कर मज़दूर वर्ग के अधिकारों पर असली जुझारू लड़ाई के लिए जागो! गोलबन्द हो! संगठित हो!

(पेज 9 से आगे)

अन्दरूनी दुश्मन है, जिसे पहचानना बेहद ज़रूरी है। ये अन्दरूनी दुश्मन हैं चुनावी पार्टियों से जुड़ी और विशेषकर नक़ली कम्युनिस्ट पार्टियों, यानी संशोधनवादी पार्टियों, से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें, मसलन, सीटू, एटक, ऐक्टू, एचएमएस, आदि। 1991 से इन्होंने कुल 24 एकदिनी रस्मअदायगी वाली आम हड़तालें की हैं। आप इनसे पूछिए कि इनकी जितनी सदस्यता है, विशेष तौर पर संगठित क्षेत्र में, तो ये मोदी सरकार के लेबर कोड को रोकने के लिए आम अनिश्चितकालीन हड़ताल का नारा क्यों नहीं देतीं? वह कौन-सी चीज़ है जो उन्हें रोक रही है? अगर देश का संगठित क्षेत्र ठप्प पड़ गया तो सरकार का सारा कामकाज ही ठप्प पड़ जायेगा। लेकिन ये सारी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें सेफ़्टी वॉल्व का काम करते हुए हर साल सरकार और मालिकों को पहले से सूचना देकर एक दिन की हड़ताल करती हैं, जिसे अब सरकारों और मालिकों ने भी एक रस्मअदायगी के तौर पर स्वीकार कर लिया है! इस बार भी इन्होंने 20 मई को एक दिन की हड़ताल का आह्वान किया था, लेकिन उसे इन्होंने यह कहकर रद्द कर दिया कि देश में अभी "गम्भीर" हालात हैं और मालिकों को सूचित नहीं किया गया है, इसलिए अब यह एकदिनी रस्मअदायगी 9 जुलाई को की जायेगी। वाह! पहले तो इन्हीं यूनियनों ने भारत और पाकिस्तान के शासक वर्गों के आपसी पूँजीवादी युद्ध में भारत के मज़दूर वर्ग का समर्थन भारत के पूँजीपति वर्ग को पहुँचाने के लिए अन्धराष्ट्रवाद का प्रचार-प्रसार किया, और बाद में मालिक वर्ग और देश की पूँजीवादी व्यवस्था की "गम्भीर" स्थिति का हवाला देते हुए हड़ताल को ही रद्द कर दिया! यह वैसी ही बात है कि दुश्मन पतली हालत में है, इसलिए पहले उसे सम्भल जाने दो, फिर हमला करेंगे! ऐसी बातें ग़द्दार ही किया करते हैं।

हम मज़दूरों को कभी नहीं भूलना चाहिए कि हड़ताल का क्या मतलब होता है। इस हथियार का हम कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं और क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग ने किस प्रकार इसका इस्तेमाल आज तक के मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में किया है? पूँजीपति वर्ग को घुटनों पर केवल तभी लाया जा सकता है, जब उसका मुनाफ़े का चक्का ठप्प पड़े। इसके बिना, एक-दो दिन की रस्मअदायगी वाली हड़तालों से केवल उसे कुछ तात्कालिक आर्थिक नुक़सान होता है और चूँकि पूँजीपति वर्ग एक राजनीतिक वर्ग है इसलिए अपने अहम राजनीतिक फ़ायदों के लिए वह ऐसा नुक़सान उठाने को तैयार भी होता है। ऐसे में, सरकारों और मालिकों से राय-मशविरा और बातचीत करके एकदिनी हड़ताल का एक दिन तय करना और उस दिन जाकर रस्मअदायगी कर देना, इससे भला सरकार और मालिक वर्ग को क्या फ़र्क़ पड़ने वाला है? **1991 से ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें कुल 24 ऐसी हड़तालें कर चुकी हैं। इससे पिछले 35 सालों में क्या हासिल हुआ है?** क्या अनौपचारिकीकरण रुका है? क्या ठेकाकरण रुका है? क्या हमारी काम और जीवन की स्थितियों में कोई बेहतरी आयी है? सभी मज़दूर भाई और बहन इन सवालों का जवाब जानते हैं। ऐसे में, इसी रस्मअदायगी को चालू रखने से भविष्य में भी क्या हासिल हो जायेगा? कोई मूर्ख व्यक्ति ही एक ही हरकत को दुहरा-दुहराकर अलग-अलग नतीजों की उम्मीद कर सकता है। लेकिन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों का नेतृत्व मूर्ख नहीं है, बल्कि काफ़ी चतुर है। अपनी सारी चतुराई यह पूँजीपति वर्ग की सेवा में लगाता है। यह मज़दूर वर्ग को पूँजीपति वर्ग की व्यवस्था की वैधिकता के दायरे में क़ैद कर देना चाहता है; वह उसके हड़ताल के औज़ार की धार को भोथरा बना देना चाहता है; वह हड़तालों को एकदिनी रस्म में तब्दील कर देना चाहता है, ताकि मज़दूर वर्ग का एकत्र हो रहा गुस्सा उस दिन कुछ बाहर निकल जाये; ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें हमारे मज़दूर आन्दोलन को क्रान्तिकारी रुख़ अख्तियार करने से रोकने और हमारे गुस्से पर क्रमिक प्रक्रिया में ठण्डे पानी का छिड़काव करने का उपकरण हैं।

लेकिन आज भी मज़दूरों की आबादी का एक विचारणीय हिस्सा इनके प्रभाव में है क्योंकि उनके सामने कोई विकल्प उन्हें नज़र नहीं आता। पस्तहिम्मती का शिकार मज़दूर 'मरता क्या न करता' की तर्ज़ पर इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की सच्चाई को जानने के बावजूद इनके पीछे चल पड़ता है। आज अपने तमाम भाइयों और बहनों के सामने एक नया क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करने की आवश्यकता है। हरेक कल-कारख़ाने और खान-खदान में मज़दूरों को इन ग़द्दारी और हमारे हक़ों की दलाली करने वाली और शासक वर्गों के उपकरण का काम करने वाली केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से बग़ावत कर यूनियन आन्दोलन की नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में लेनी होगी, अपना नया क्रान्तिकारी नेतृत्व विकसित करना होगा और नयी क्रान्तिकारी यूनियनों को खड़ा करना होगा।

ऐसे नये क्रान्तिकारी यूनियन आन्दोलन का पहला क़दम होगा मज़दूर वर्ग के जायज़ हक़ों, यानी आठ घण्टे का कार्यदिवस लागू करने, नियमित प्रकृति के कामों पर हर रूप में ठेका प्रथा का पूर्ण उन्मूलन करने, ट्रेनी व अप्रेण्टिस आदि के नाम पर अस्थायी मज़दूरों का शोषण करने पर पूर्ण रोक लगाने, मज़दूरों को ईएसआई-पीएफ़ का हक़ देने, यूनियन बनाने के रास्ते में समस्त बाधाओं को समाप्त करने आदि माँगों पर पूँजीपति वर्ग को आम अनिश्चितकालीन हड़ताल की चेतावनी देना और इन माँगों को न मानने की सूरत में क्रमिक प्रक्रिया में एक आम अनिश्चितकालीन हड़ताल की ओर आगे बढ़ना।

यह एक मुश्किल काम है। यह एक लम्बा काम है। लेकिन यही वह काम है जो आज हमारे आन्दोलन के गतिरोध और ठहराव को तोड़ सकता है। यही वह काम है जो हमारे वाजिब हक़ों को हमें दिला सकता है। यही वह काम है जिसे करने की तैयारी की हमें फ़ौरन शुरुआत करनी होगी। इसके लिए, अगुवाई करने की क्षमता रखने वाले, अनुभव व सूझबूझ रखने वाले उन्नत हिरावल मज़दूर भाइयों और बहनों को आगे आना होगा। सभी मेहनतकश-मज़दूर साथी हमारे ऐसे अगुवा तत्वों की बातों को सुनते हैं, समझते हैं। इसलिए उनकी ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है। उन्हें पहलक़दमी लेनी होगी और इस काम को पूरा करने के लिए यूनियनों के भीतर भी संघर्ष करना होगा और जहाँ पर यूनियन नेतृत्व पूर्णत: समझौतापरस्त या भ्रष्ट हो, वहाँ उसे उखाड़ फेंकना होगा और जहाँ अनिवार्य हो जाये वहाँ नयी क्रान्तिकारी यूनियनों के निर्माण और गठन की दिशा में भी आगे बढ़ना होगा।

जब तक हम यह काम नहीं शुरू करते, हमारे आन्दोलन का ठहराव टूट नहीं सकता है। ऐसे में, पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली चुनावी पार्टियों से जुड़ी ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें हमारा इस्तेमाल कर अपना सिक्का चमकाती रहेंगी, उनमें मौजूद नौकरशाही पूँजीपति वर्ग की सेवा के लिए अपना मेवा भी लेती रहेगी और हमारे आन्दोलन को पूर्णत: पुंसत्वहीन बनाकर रखेंगी। इस बात को समझने के लिए आपको बस पिछले चार-पाँच दशक में हमारे आन्दोलन के इतिहास पर एक निगाह डालने की ज़रूरत है। जिन्हें यह इतिहास नहीं पता, वे बस अपनी स्मृतियों के आधार पर इन यूनियनों की भूमिका को याद कर लें कि हरेक मज़दूर संघर्ष में इन्होंने कैसे हमारे हितों और हक़ों की दलाली खायी है।

आज मई दिवस के मौक़े पर हमें इस नये संघर्ष को शुरू करने का संकल्प लेना होगा। हमें नये सिरे से जागृत, गोलबन्द और संगठित होना होगा। आने वाले समय में पूँजीपति वर्ग के हमले और भी ज़्यादा बढ़ने वाले हैं। हमारे बचे-खुचे हक़ों को भी मोदी सरकार के ज़रिये पूँजीपति वर्ग नष्ट कर देना चाहता है। प्रस्तावित लेबर कोडों के लागू होने के साथ यह प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। हमें अभी से ही अपने भीतर मौजूद भितरघातियों की पहचान करनी होगी, ताकि आने वाले समय में जब मज़दूर-मेहनतकश आबादी पूँजीपति वर्ग के बढ़ते हमलों के विरुद्ध रोष के साथ सड़कों पर उतरे तो ये भितरघाती उन्हें गुमराह न कर सकें, उनके गुस्से को शान्त कर उनके आन्दोलन को पूँजीपति वर्ग की चौहद्दियों में न क़ैद कर सकें। यही मई दिवस की विचार, मई दिवस की स्पिरिट और मई दिवस के शहीदों का सम्मान करने का उपयुक्त तरीक़ा हो सकता है।

पहलगाम आतंकी हमला : कश्मीर में शान्ति स्थापना के दावे हुए हवा! सैलानियों और आम नागरिकों की सुरक्षा में चूक के लिए कौन है ज़िम्मेदार ?

(पेज 11 से आगे)

मारे गये थे, उसे भाजपा द्वारा चुनाव प्रचार में भुनाया गया, मगर इस घटना को अंजाम देने में मोदी सरकार की मिलीभगत को उन्हीं के एक नेता, जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन राज्यपाल सत्यपाल मालिक ने उजागर किया था। ज़्यादा दिन नहीं हुए जब देवेन्द्र सिंह नामक डीएसपी रैंक के एक बड़े पुलिस अधिकारी को हिज़्बुल मुज़ाहिद्दीन के इनामी आतंकवादियों के साथ पकड़ा गया था। पुलवामा के हमले के बाद सैनिकों की मौत के नाम पर अन्धराष्ट्रवाद और युद्धोन्माद भड़काकर वोट माँगने वालों की असलियत क्या किसी से छिपी है? यह अकारण ही नहीं है कि सोशल मीडिया पर इस घटना को पुलवामा-2 होने का अंदेशा जताया जा रहा है। भाजपा और आरएसएस की मशीनरी द्वारा अन्धराष्ट्रवादी साम्प्रदायिक उन्माद को हवा दी जा रही है ताकि आने वाले बिहार और फिर पश्चिम बंगाल चुनावों के लिए "अनुकूल" माहौल तैयार किया जा सके। हिन्दुत्व फ़ासीवादी इस मसले को भी मुसलमानों व अन्य विरोधियों को निशाना बनाने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं, ताकि लोगों का ध्यान बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी, भ्रष्टाचार जैसे असल मुद्दों से भटकाया जा सके। यह बार-बार दुहराई जाने वाली फ़ासीवादी रणनीति का ही हिस्सा है।

हम आपसे अपील करते हैं कि इस साम्प्रदायिक उन्माद में न बहें, ज़रा धैर्य से ठण्डे दिमाग़ से ऊपर लिखी गयी बातों पर सोचिए। भाजपा और संघ परिवार के लोगों के एजेण्डे में फँसने की कत्तई ज़रूरत नहीं है। इनके ख़ुद के बच्चे तो विदेशों में पढ़ते हैं और अच्छी तरह से सेटल हैं लेकिन बेरोज़गारी की मार झेल रहे हमारे-आपके भाई-बहनों और बेटे-बेटियों की दुर्गति करने में ये एक बार के लिए भी नहीं हिचकेंगे। इसलिए दोस्तो, शिक्षा-रोज़गार और चिकित्सा-आवास जैसे अपने असल हक़-अधिकारों पर अपनी एकजुटता बनाये रखो और साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों का शिकार बनकर अपने ही भाइयों से बैर मोल मत लो। कश्मीरियों और ग़रीब व प्रवासी मुस्लिमों पर हमलावर गुण्डा गिरोहों को अपनी एकजुटता के दम पर पीछे धकेलो क्योंकि अन्याय को चुपचाप देखना भी अन्याय का भागीदार बनना ही होता है।

पहलगाम घटना के बाद हर एक इन्साफ़पसन्द नागरिक को सरकार से माँग करनी चाहिए कि पहलगाम के आतंकी हमले की पुख़्ता जाँच होनी चाहिए। इस हमले में मृतक जनों को उचित मुआवज़ा दिया जाये और घायलों को बेहतर इलाज़ मुहैया कराया जाना चाहिए। इसके साथ ही कश्मीर में जाने वाले सैलानियों, वहाँ कार्यरत सरकारी कर्मचारियों, प्रवासी श्रमिकों और सभी आम नागरिकों को जान-माल की सुरक्षा की गारण्टी दी जाये। देश भर के अलग-अलग राज्यों में पढ़ाई कर रहे कश्मीरी छात्रों और रोज़ी-रोज़गार के लिए जाने वाले मज़दूरों को ज़रूरी सुरक्षा मुहैया करायी जाये।

पहलगाम आतंकी हमला : कश्मीर में शान्ति स्थापना के दावे हुए हवा! सैलानियों और आम नागरिकों की सुरक्षा में चूक के लिए कौन है ज़िम्मेदार ? पहलगाम चरमपन्थी हमले को बहाना बनाकर देशभर को साम्प्रदायिकता की आग में झोंकने की संघी साज़िशों को नाक़ाम करो !

● भारत

आप जानते ही हैं कि 22 अप्रैल के दिन कश्मीर के अनन्तनाग ज़िले के पहलगाम नामक पर्यटन स्थल पर आतंकी हमला हुआ। इस हमले में कुल 27 लोगों की जान चली गयी तथा कई घायल हो गये। इस आतंकी हमले में मरने वालों में भारत के अलग-अलग राज्यों के लोग और एक विदेशी नागरिक शामिल है। हमले की ज़िम्मेदारी 'द रेज़िस्टेंस फ्रण्ट' नामक चरमपन्थी गुट ने ली जो कि पाकिस्तानी आतंकी संगठन लश्कर-ए-तैयबा से सम्बन्धित बताया जाता है। इस हमले से देश के सभी लोग दुःखी और आक्रोशित हैं। हमले के बाद से अलग-अलग राज्यों से कश्मीरी छात्रों और मुस्लिम श्रमिकों को निशाना बनाये जाने की ख़बरें आ भी रही हैं। इस हमले ने कश्मीर में शान्ति और सुरक्षा को लेकर मोदी सरकार के दावों पर भी सवाल भी खड़े कर दिये हैं। आख़िर यह क्यों हो रहा है और इससे किसका फ़ायदा होगा, इन सब बातों पर हमें ठण्डे दिमाग़ से सोचना चाहिए।

सबसे पहला सवाल जिसपर हमें सोचना चाहिए कि क्या कश्मीरी लोग हमारे दुश्मन हैं?

गोदी मीडिया हमसे सारी सच्चाइयों को छिपाकर इस आतंकी हमले को भरपूर साम्प्रदायिक रंग देने में जुटा हुआ है। हमले के बाद से संघ और उसके तमाम फ़ासीवादी संगठनों द्वारा देश भर में साम्प्रदायिक तनाव पैदा किया जा रहा है। भाजपा का पालतू आईटी सेल तरह-तरह के झूठ परोसने में मग्न है। इस हमले के विरोध में खड़े हर कश्मीरी को आतंकी और देश के हर मुस्लिम को शक़ के घेरे में धकेला जा रहा है। पाकिस्तान का हौवा खड़ा करके हर कश्मीरी और हर मुस्लिम को हिन्दुस्तान का दुश्मन बताकर निशाना बनाया जा रहा है। सबसे पहले वह सच्चाई हमें जान लेनी चाहिए, जिसे हमसे छुपाया जा रहा है।

हमले के दौरान पर्यटकों की जान बचाने और उन्हें सुरक्षित पहुँचाने में कश्मीर के घोड़े वाले, होटल वाले, ऑटो-गाड़ी वाले और तमाम लोग जुट गये और उनकी भरपूर सहायता की। यही नहीं आदिल हुसैन नामक एक घोड़े वाले की तो आतंकी की गोली से मौक़े पर जान भी चली गयी। सैलानियों ने ख़ुद स्वीकारा कि छोटे-मोटे काम-धन्धे वाले ग़रीब कश्मीरी बिना पैसे के उनकी हर प्रकार की मदद में तत्पर दिखायी दिये। इस आतंकी हमले की कश्मीर की आम आबादी ने भरपूर भर्त्सना की है। इसके ख़िलाफ़ आम लोगों ने सड़कों पर उतरकर विरोध जताया। इसके विरुद्ध कश्मीर की मस्जिदों से ऐलान किये गये और तमाम राजनीतिक पार्टियाँ भी इस कुकृत्य के विरोध में उतरी। भारतीय मुख्य धारा के मीडिया द्वारा कश्मीरियों की जो छवि सदियों से दिखायी जा रही थी सोशल मीडिया पर तैर रही ख़बरों, तस्वीरों और विडियो ने उसे धूल में मिला दिया है। इसके बावजूद इस हमले का कश्मीरी पर्यटन पर निश्चय ही बहुत नकारात्मक असर पड़ने वाला है, जिससे इस इलाक़े के मेहनतकश लोगों की रोजी-रोटी पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। कश्मीर की आम जनता आतंकवाद का बुरा दौर देख चुकी है और वह कभी इसके साथ खड़ी नहीं रही, लेकिन इसके बावजूद दमन के बाद पनपने वाला असन्तोष विभिन्न तरह के कट्टरपन्थी आतंकवादी संगठनों को फलने-फूलने का मौक़ा ज़रूर देता है। इसके साथ ही यह हमला कश्मीर में "शान्ति स्थापना" के केन्द्र सरकार के तमाम दावों की भी बख़ूबी पोल खोलता है।

पहलगाम हमले में हुई मौतों के लिए फ़ासीवादी मोदी सरकार जवाबदेह है!

सबसे पहले तो घटनास्थल पर यानी कश्मीर के एक बेहद मशहूर पर्यटक स्थल पर सुरक्षा बलों की ग़ैर-मौजूदगी पर कई सवाल उठ रहे हैं। याद कीजिए कश्मीर में धारा 370 को हटाये जाने के बाद गृहमन्त्री अमित शाह हर मंच पर अपनी छाती ठोंककर कश्मीर में "शान्ति" बहाल करने के लम्बे-चौड़े दावे कर रहे थे। धारा 370 हटाये जाने का काफ़ी जश्न मनाया गया था। पिछले कुछ सालों में गोदी मीडिया ने भी देश के लोगों को यह बताने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी की कश्मीर में सबकुछ "सामान्य" है। घाटी में बढ़ती पर्यटकों की संख्या को इस बात के सबूत के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था कि इलाक़े में शान्ति बहाल हो चुकी है। मोदी सरकार की "सफ़लता" को साबित करने के लिए पिछले कुछ सालों में कई घटनाओं पर गोदी मीडिया द्वारा लगातार पर्दा डाला जाता रहा है। इसमें से कुछ घटनाएँ तो जम्मू की हैं। कश्मीर के हालिया चुनाव में भाजपा द्वारा एक भी उम्मीदवार न खड़ा किया जाना यह दिखाता है कि कश्मीरी अवाम के बीच भाजपा कितनी "लोकप्रिय" है। आँकड़े भी मोदी सरकार द्वारा कश्मीर में "शान्ति स्थापना" के दावों की पोल खोल रहे हैं। साउथ एशिया टेररिज़्म पोर्टल के आँकड़ों को देखें तो पता चलता है कि 2014 के कश्मीर में हत्या की घटनाओं की संख्या जहाँ 91 थी, वहीं 2022 में वह बढ़कर लगभग 150 हो गयी। 193 आतंकियों के साथ-साथ तक़रीबन 30 नागरिक और 30 सुरक्षा के जवान मारे गये थे। मोदी सरकार के कार्यकाल में ऐसी कई घटनाएँ घट चुकी हैं। आईएएफ़ के जम्मू एयरपोर्ट पर 27 जून 2021 को एक ड्रोन हमला हुआ था। श्रीनगर में जुलाई 2021 में 17 हथियारबन्द हमले हुए थे। 33 नागरिक अक्तूबर 2021 में मारे गये थे। 9 मार्च 2022 को सरपंच समीर अहमद भट्ट की हत्या हुई थी। 3 अप्रैल 2022 को प्रवासी मज़दूरों को निशाना बनाया गया था। ठीक इसी तरह की घटनाएँ पुलवामा में 3-4 अप्रैल को हुई थीं। 25 मई 2022 को अभिनेता अंबरीन भट्ट को मारा गया था, 13 मई 2022 को एक कश्मीरी पण्डित की हत्या हुई थी। फिर, अक्तूबर 2022 में दो कश्मीरी पण्डितों माखन लाल बिंदरू और राहुल भट्ट को मारा गया था। 2019 के बाद से जम्मू-कश्मीर में ऐसे आतंकी हमले लगातार बढ़े हैं। मोदी-शाह सरकार जो कश्मीर में ''सामान्य'' स्थिति बहाल करने का दावा करती है, उसे जवाब देना चाहिए कि कश्मीर घाटी में कश्मीरी पण्डित अभी तक वापस क्यों नहीं जा सके हैं!

भारतीय राज्यसत्ता द्वारा अपनायी गयी राष्ट्रीय दमन की नीति को न सिर्फ़ फ़ासीवादी भाजपा सरकार ने आगे बढ़ाया है बल्कि उसने नागरिक और जनवादी अधिकारों पर हमले, पत्रकारों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के दमन को भी नये आयाम दिये हैं। अपनी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी विभाजनकारी नीतियों को लागू करते हुए भाजपा सरकार द्वारा जम्मू की तुलना में कश्मीर घाटी में सापेक्षिक तौर पर लोगों की चुनावी ताक़त को कम करने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करना, ग़ैर-कश्मीरियों के लिए मतदाता सूची में संशोधन करना, डोमिसाइल नियमों को बदलने, सम्पति और भूमि स्वामित्व सम्बन्धी क़ानूनों और कश्मीर की जनसांख्यिकी को बदलने के लिए उठाये गये कदमों ने कश्मीरियों के बीच असन्तोष को और बढ़ा दिया है। भारतीय राज्यसत्ता का कश्मीरी राष्ट्र के साथ जो विश्वासघात और दमन नेहरू के काल में शुरू हुआ था उसे मोदी सरकार ने 2019 में धारा 370 निरस्त करके नई ऊँचाईयों तक पहुँचा दिया।

कश्मीर दुनिया भर में सबसे ज़्यादा सैन्यकृत जगहों में से एक है। इसके बावजूद कैसे पुलवामा जैसी घटना हो जाती है जिसमें सीआरपीएफ़ के 40 जवान मारे गये थे? और अब कैसे पहलगाम जैसी घटना हो गयी, जिसमें 27 बेगुनाहों की जान चली गयी!? यदि इन हमलों के पीछे सचमुच पाकिस्तान का ही हाथ है तो सीमापार से घुसपैठ हो कैसे जाती है! मोदी सरकार ने अपना छप्पन इंची सीना फुलाकर नोटबन्दी के साथ "आतंकवाद की कमर तोड़नी" शुरू की थी, लेकिन उसके बाद भी "आतंकवाद की कमर टूटती" नज़र नहीं आ रही है। निश्चय ही जहाँ न्याय नहीं है वहाँ शान्ति नहीं हो सकती है।

पाकिस्तान का शासक वर्ग भी चाहता है वहाँ के अवाम का असल मुद्दों से ध्यान भटकाना!

पाकिस्तान के लश्कर-ए-तैयबा के एक अंग 'द रेज़िस्टेंस फ्रण्ट' ने कथित तौर पर नागरिकों पर किये गये इस हमले की ज़िम्मेदारी ली है। कश्मीर घाटी में आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा देने और उनकी फ़ण्डिंग में पाकिस्तानी राज्यसत्ता की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। पाकिस्तान का शासक वर्ग ख़ुद ही बलूचिस्तान, ख़ैबर पख्तूनख्वा में बलूच और पश्तूनों पर और साथ ही पाकिस्तान द्वारा नियन्त्रित कश्मीर के भीतर कश्मीरियों पर हो रहे राष्ट्रीय दमन के ख़िलाफ़ जन-प्रतिरोध का सामना कर रहा है। पिछले कुछ वर्षों में पाकिस्तान के अन्य हिस्सों में भी आतंकवाद की घटनाओं में वृद्धि हुई है। पाकिस्तानी शासक वर्ग और पाकिस्तानी सेना खुले तौर पर पाकिस्तान में इस्लामीकरण को बढ़ावा देने का काम कर रही हैं। पाकिस्तान की चरमराती हुई आर्थिक स्थिति ने वहाँ की जनता में बड़े स्तर पर असन्तोष पैदा किया है। वहाँ ऐसा पहले भी हो चुका है कि जब भी जनता का असन्तोष बढ़ता है, वहाँ के शासक वर्ग ने जनता का ध्यान असल मुद्दों से भटकाने के लिए कश्मीर के मुद्दे को उठाते रहे हैं। परन्तु भारत में मुख्यधारा का मीडिया जो कि मुख्यतः आरएसएस और भाजपा की गोद में बैठा है, यहाँ की जनता को यह नहीं बताता कि संघ परिवार की साम्प्रदायिक और विभाजनकारी राजनीति ही पाकिस्तानी शासक वर्ग और उसकी सेना द्वारा भारत में आतंकवादी गतिविधि को प्रायोजित करने के लिए अनुकूल माहौल बनाने का काम करती है। गोदी मीडिया जब भी आतंकवादी गतिविधि को पाकिस्तान से जोड़ने का काम करता है, तो अकसर उसका निशाना भारत का मुस्लिम समुदाय होता है, और वह पूरे मुस्लिम समुदाय को इस हरकत का ज़िम्मेदार ठहराता है। इस तरह से आतंकवादी हरकत को घृणित साम्प्रदायिक फ़ासीवादी एजेण्डा को फैलाने का हथियार बनाया जाता है। गोदी मीडिया बेहद शातिराना ढंग से इस तथ्य को छिपा रहा है कि इस हमले के दौरान कई कश्मीरियों ने लोगों की मदद की और कश्मीरी बड़ी संख्या में इस आतंकवादी हमले के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन भी कर रहे हैं।

असल में, सरहद के दोनों ओर शासक वर्ग और धार्मिक कट्टरपन्थी एक-दूसरे के पूरक हैं। इस्लामिक कट्टरपन्थियों द्वारा पाकिस्तान का इस्लामीकरण और हिन्दुत्व फ़ासीवादियों द्वारा भारत का हिन्दुत्वीकरण दोनों ही देशों के शासक वर्गों के हितों को साधने का काम करता है। जो लोग धार्मिक कट्टरपन्थ और फ़ासीवादी राजनीति का किसी भी रूप में समर्थन करते हैं, उनको पहलगाम जैसी आतंकवादी घटना पर आक्रोश ज़ाहिर करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। यह केवल उनके पाखण्ड को ही दिखाता है। आरएसएस और भाजपा की साम्प्रदायिक राजनीति ने कश्मीर समेत सभी मुद्दों को हिन्दू और मुस्लिमों के बीच आग भड़काने का एक ज़रिया बन दिया है। पहलगाम में जो कुछ भी हुआ, वह मोदी-शाह सरकार के पिछले एक दशक के दौरान अपने चरम पर पहुँच चुकी इस घृणित राजनीति की ही परिणति है। यह साम्प्रदायिक फ़ासीवादी सरकार और संघ परिवार अपने गिरेबान पर लगे निर्दोष नागरिकों के ख़ून के धब्बों को मिटा नहीं सकते। वास्तव में, हिन्दू और इस्लामिक कट्टरपन्थी दोनो प्रकार की ताक़तें पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में हिंसा और ख़ून-ख़राबे को बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार है।

साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों की नफ़रती राजनीति का शिकार मत बनो!

यहाँ एक बात और ध्यान देनी वाली है, जिसपर आपको गौर करना चाहिए। आप जानते ही हैं आने वाले कुछ महीनों के बिहार और बंगाल में चुनाव होने वाले हैं। यह सवाल अकसर उठता है कि आख़िर क्यों ऐसे आतंकी हमले चुनाव से ठीक पहले ही होते हैं? कारगिल युद्ध से लेकर कश्मीर में जितने भी बड़े हमले हुए हैं ज़रा आँख-कान खोलकर उनकी समय सारणी को चुनावों की समय सारणी से मिलायेंगे तो दाल में ज़रूर कुछ काला नज़र आयेगा। पुलवामा की घटना, जिसमें 40 भारतीय जवान

(पेज 10 पर जारी)

हिमांशी नरवाल और शैला नेगी को संघी गुबरैलों द्वारा धमकी : यही है इन फ़ासिस्टों का असली चरित्र

• नौरीन

22 अप्रैल को जम्मू कश्मीर के पहलगाम में पर्यटकों पर आतंकवादी हमला होता है। इस हमले में कुल 26 लोगों की जान जाती है। कायदे से तो इसके बाद यह सवाल उठना चाहिए था कि आतंकवादी देश की सीमा के भीतर कैसे आये और दुनिया के सबसे सैन्य सघन क्षेत्र में ऐसा हमला हुआ कैसे? लेकिन हुआ ठीक इसका उल्टा। चूँकि ये मामला कश्मीर से जुड़ा था तो भला फ़ासीवादी मोदी सरकार व आरएसएस की पूरी मशीनरी अपना प्रोपैगेण्डा फ़ैलाने में पीछे कैसे रहती। हमेशा की तरह इस घटना का इस्तेमाल भी फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसके संघी गुबरैलों ने देश भर में कश्मीरियों और मुसलमानों के प्रति नफ़रत फैलाने के लिए किया। एक तरफ़ जहाँ पूरा देश इस घटना के बाद स्तब्ध था वहीं दूसरी तरफ़ संघियों का गुण्डा गिरोह इस घटना की आड़ में पूरे देश भर में साम्प्रदायिकता का नंगा नाच करने का माहौल तैयार करने में लगा हुआ था। हालाँकि जिस स्तर पर उन्हें सफ़लता की उम्मीद थी वह उन्हें नहीं मिली। इस बार आम मेहनतकश जनता का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा उन्माद और भावनाओं में बहने के बजाय सरकार से सवाल पूछ रहा था। संघियों के इस नफ़रती प्रोपैगेण्डा को सबसे बड़ा धक्का तब लगा जब एक तरफ़ तो मारे गये पर्यटकों के परिजन सरकार से सवाल कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ़ उनका यह भी कहना था कि इस घटना का हिन्दू-मुसलमान से कोई लेना-देना नहीं है। उन्होंने साफ़ कहा कि इसके लिए कश्मीरी या मुसलमान कतई दोषी नहीं हैं। संघी गुबरैले जिनकी पूरी राजनीति ही नफ़रत पर टिकी हुई है उन्हें ये बात भला कैसे हज़म होती! इसके बाद इन गुण्डो ने मारे गये पर्यटकों के उन परिजनों, पत्नियों, आदि को ही निशाना बनाना शुरू कर दिया, जो हिन्दू-मुसलमान एकता की बात कर रहे थे जो आपसी सौहार्द्र बनाये रखने की बात कर रहे थे। इस फ़ासीवादी हमले का निशाना बनीं ख़ुद आतंकी हमले में मारे गये नौसेना अधिकारी की पत्नी हिमांशी नरवाल।

क्या है हिमांशी नरवाल और शैला नेगी का मामला?

पहलगाम में हुए आतंकी हमले के दौरान जिस नौसेना अधिकारी की लाश और उसकी पत्नी की तस्वीरों के ज़रिये फ़ासीवादी देश को साम्प्रदायिकता की आग में झोंकने की पूरी ताक़त लगा रहे थे उसी नौसैनिक की पत्नी हिमांशी ने जब लोगों से कश्मीरियों और मुसलमानों को निशाना न बनाने और शान्ति क़ायम करने की अपील की, तो संघी गुण्डे वहाँ भी महिला-विरोधी हरक़तें करने से नहीं चूकें। पत्रकारों से बातचीत करते हुए हिमांशी नरवाल ने कहा था कि "हम नहीं चाहते कि लोग मुसलमानों या कश्मीरियों के ख़िलाफ़ जायें। हम शान्ति चाहते हैं और केवल शान्ति। बेशक़, हम न्याय चाहते हैं, जिन्होंने ग़लत किया है उन्हें सज़ा मिलनी चाहिए."। यह चार लाइन का स्टेटमेण्ट संघियों के प्रोपैगेण्डा को ध्वस्त करने के लिए काफ़ी था। इसके बाद हिमांशी नरवाल को सोशल मीडिया पर ट्रोल किया जाने लगा। हिमांशी के ख़िलाफ़ संघी ट्रोल्स भद्दे-भद्दे कमेण्ट लिख रहे हैं। कोई उन्हें जेएनयू का बता रहा है तो कोई उन्हें बलात्कार की धमकी दे रहा है, कोई उन्हें पाकिस्तानियों से निकाह करने की सलाह दे रहा है! यह सब करके भाजपाई और संघी गुण्डों ने बेजोड़ "राष्ट्रवाद" का प्रदर्शन किया है!

दूसरा मामला उत्तराखण्ड की शैला नेगी का है। यहाँ कथित बलात्कार का विरोध करने उतरा संघी गुण्डा गिरोह साम्प्रदायिक नारे लगा रहा था, दंगा करने का प्रयास कर रहा था, दुकानों में तोड़-फोड़ कर रहा था। हालाँकि ये ही "संस्कृतिरक्षक" बाबा आसाराम, राम रहीम, कुलदीप सेंगर, ब्रजभूषण आदि जैसे भाजपाई बाबाओं और नेताओं के द्वारा किये गये बलात्कारों और यौन शोषण के मसले को एक "राष्ट्रवादी कार्रवाई" मानते हैं! वहाँ मौजूद शैला नेगी बताती हैं कि "वे पीड़िता के साथ

दुर्व्यवहार का विरोध कर रहे थे, लेकिन महिला विरोधी नारे लगा रहे थे। यह बस एक भीड़ थी जो लोगों को डराने की कोशिश कर रही थी... उन्होंने मेरे पिता से पूछा कि क्या वह मुस्लिम या पाकिस्तानी हैं। जिस पर उन्होंने जवाब दिया, 'मैं मुस्लिम हूँ। आप ऐसे समय में मुझसे ऐसा सवाल कैसे पूछ सकते हैं?' भीड़ ने इस मुद्दे को साम्प्रदायिक बना दिया, जो नहीं होना चाहिए था... हिन्दू और मुस्लिम, हम एक हैं"। इसके बाद सोशल मीडिया पर शैला नेगी को जान से मारने, उनके साथ बलात्कार करने की धमकी मिल रही है और लगातार उन्हें संघी ट्रोल कर रहे हैं। एक मीडिया को दिये साक्षात्कार में नेगी ने कहा कि उन्हें सोशल मीडिया पर धमकियाँ मिल रही हैं, लेकिन वह अब भी साम्प्रदायिक एकता और भाईचारे में विश्वास रखती हैं।

क्या बताता है हिमांशी नरवाल और शैला नेगी का मामला?

हिमांशी नरवाल और शैला नेगी के साथ जो हुआ वह कोई अपवाद नहीं है। ख़ासतौर पर 2014 से सत्ता में आने के बाद फ़ासीवादी भाजपा और उसके आईटी सेल द्वारा सभी प्रकार के असन्तोष की आवाज़ों को दबाने के लिए हमले जारी हैं। ये दोनों घटनाएँ उसी फ़ासिस्ट परियोजना का एक हिस्सा हैं जिसके तहत गोविन्द पानसारे, गौरी लंकेश आदि जैसे जनपक्षधर लोगों की हत्या कर दी जाती है। जो लोग इस गुण्डा गिरोह के प्रोपैगेण्डा का हिस्सा बनने से मना करते हैं, बड़े ही सुनियोजित तरीक़े से आईटी सेल के उन्मादी व दंगाई संघी सोशल मीडिया पर उनके साथ गाली-गलौच करते हैं, रेप आदि की धमकी दी जाती है। कल तक जिस हिमांशी नरवाल की फ़ोटो शेयर करके ये संघी गुबरैले और आईटी सेल के संघी गुबरैले देश में कश्मीरियों और मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत का माहौल बना रहे थे उसी हिमांशी नरवाल ने जब लोगों से अपील कि की इस मामले को साम्प्रदायिक रंग न दिया जाये और इसमें कश्मीरियों की ग़लती नहीं है तो इन संघियों के पेट में मरोड़ शुरू हो गया।

वहीं दूसरी ओर उत्तराखण्ड में बलात्कार के ख़िलाफ़ रैली निकालने वाले ये संघी वास्तव में बलात्कारी को सज़ा दिलाने के लिए नहीं बल्कि बलात्कारी के धर्म का इस्तेमाल लोगों के बीच दंगा कराने व साम्प्रदायिक ज़हर का प्रचार-प्रसार करने के लिए कर रहे थे। अगर सच में इन संघियों को बलात्कार की घटना से फ़र्क पड़ता तो ये सबसे पहले चिन्मयानन्द, आशाराम, कुलदीप सिंह सेंगर, प्रज्ज्वल रेवन्ना, ब्रजभूषण शरण सिंह के ख़िलाफ़ रैली निकालते। इन्हें भारतीय जनता पार्टी के मुख्यालय पर तोड़फोड़ करना चाहिए क्योंकि यही वो पार्टी है जिसमें बलात्कारियों की भरमार है। ये वो लोग हैं जो कठुआ में एक बच्ची के साथ बलात्कार और उसकी हत्या करने वाले बलात्कारी के पक्ष में तिरंगा यात्रा निकालते हैं। आप ख़ुद इनका चरित्र समझ सकते हैं।

हिमांशी नरवाल और शैला नेगी के मामले ने संघियो की स्त्री-विरोधी मानसिकता को फिर से उजागर कर दिया है। इनके लिए महिलाएँ महज़ उपभोग की वस्तु और बच्चा पैदा करने की मशीन है। इन संघियों को बर्दाश्त नहीं कि कोई महिला इनके ख़िलाफ़ बोले। भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का इतिहास रहा है कि इन्हें न तो आतंकवादी हमले से कोई फ़र्क पड़ता है और न ही किसी स्त्री-विरोधी घटना से। इनके लिए सभी घटनाएँ सिर्फ़ और सिर्फ़ वह ज़रिया है जिससे ये अपनी नफ़रती साम्प्रदायिक राजनीति का गन्दा कारोबार करते हैं। ये वे लोग हैं जिन्होंने कारगिल के युद्ध में मारे गये सैनिकों के लिए ताबूतों की ख़रीद तक में घोटाले किये हैं, आजादी की लड़ाई में अंग्रेज़ों का साथ दिया है, क्रान्तिकारियों के ख़िलाफ़ मुखबिरी की है और माफ़ीनामे लिखे हैं। अगर इनके "राष्ट्रवाद" का कच्चा-चिट्ठा देश की जनता के सामने सही तरीक़े से खोला जाय, तो इनकी असलियत सबके सामने आ जायेगी। देश की जनता अच्छे से जानती है कि सरकार की असली मंशा तो यह है कि कैसे पहलगाम की घटना का इस्तेमाल करके देश में उन्मादी माहौल बनाया जाये। साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया जाये। हिन्दू-मुसलमान के बीच के भेद को और बढ़ाकर पश्चिम बंगाल, बिहार जैसे राज्यों में होने वाले चुनावों में फ़ायदा उठाया जाये। यहाँ असली निशाना बंगाल और बिहार के चुनाव हैं।

पहलगाम की घटना के बाद उठते कुछ ज़रूरी सवाल

पहलगाम की घटना को लेकर मोदी की गोदी में बैठी हमारे देश का गोदी मीडिया कोई सवाल करेगा ऐसी उम्मीद हमें नहीं करनी चाहिए। जो लोग पहलगाम के नाम पर हमारे बीच साम्प्रदायिक बँटवारे की राजनीति करने आयें उनसे ये सवाल ज़रूर पूछना चाहिए -

• हमारे देश की सरहद में ये आतंकवादी कैसे घुसे?

• बैसरन जैसे भीड़भाड़ वाली जगह पर सुरक्षा के इन्तज़ाम क्यों नहीं थे ?

• घटना के लगभग 1 घण्टे बाद वहाँ पुलिस पहुँचती है, जबकि मारे गये पर्यटकों के परिवारों का कहना है कि अगर समय से लोगों को अस्पताल ले जाया जाता तो शायद कई लोगों की जान बच जाती।

• जम्मू-कश्मीर में लाखों की संख्या में सेना व ख़ुफिया विभाग तैनात है। यह दुनिया का सबसे ज़्यादा सैन्य-सघन क्षेत्र है। क्या इण्टेलिजेंस को इस घटना की ख़बर नहीं थी और अगर इसकी ख़बर नहीं थी तो क्या इसे इण्टेलिजेंस और मोदी सरकार की भारी असफलता नहीं माना जाना चाहिए?

• 2019 में पुलवामा हमला हुआ था जिसके बाद जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने फ़ासीवादी मोदी सरकार के ख़िलाफ़ गम्भीर सवाल उठाये थे। लेकिन आज तक उन सवालों का ज़वाब सरकार ने नहीं दिया।

• क्या हुआ धारा 370 के दावे का जिसके बाद दुनिया भर में घूम-घूम कर प्रधानमन्त्री मोदी ढिन्ढोरा पीट रहे थे कि इससे कश्मीर से आतंकवाद ख़त्म हो जायेगा?

• क्या हुआ नोटबन्दी का जिसके बाद प्रधानमन्त्री मोदी ने आश्वासन दिया था कि इससे सीधे आतंकवादियों पर मार पड़ेगी और जम्मू कश्मीर से आतंकवाद ख़त्म हो जायेगा?

अपने देश के पक्ष में खड़ा होने का यह कत्तई मतलब नहीं है कि हम सरकार की हाँ में हाँ मिलायें। अपने देश से प्यार करने वाले तमाम लोगों का पहला कर्तव्य है कि वो सरकार से सवाल पूछें। उसकी जवाबदेही तय करें। सच यह है कि आतंकवाद की जड़ में एक समूची कौम का दमन और उसे आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित किया जाना है। यदि यह जनवादी अधिकार उन्हें मिलता तो पाकिस्तान के हुक्मरान या कोई भी बाहरी ताक़त आतंकवाद को बढ़ावा नहीं दे सकती, क्योंकि आतंकवाद के पैदा होने का आन्तरिक कारण ही समाप्त हो जायेगा। इसलिए चाहे सेना की तैनाती को कितना ही बढ़ा दिया जाय, दमन को कितना भी बढ़ा दिया जाय, यह समस्या समाप्त नहीं होने वाली, उल्टे मौजूद रहेगी और बढ़ भी सकती है।

जुझारू जनएकजुटता ही इन संघियों को मुँहतोड़ ज़वाब है

हिमांशी नरवाल और शैला नेगी ने जिस बहादुरी के साथ इन संघियों के साम्प्रदायिक एजेण्डा को ध्वस्त किया है आज हमें इससे सीखने की ज़रूरत है। गुण्डों का ये गिरोह सड़कों पर जो आतंक मचाये फिर रहा है उसको उसी की भाषा में सड़कों पर मुँहतोड़ जवाब देना होगा। इन गुबरैलों को सबसे ज़्यादा डर लोगों की एकजुटता से लगता है। लोग एकजुट होकर इनके दोगलेपन पर सवाल न करने लगें इसीलिए जब भी कोई व्यक्ति इनसे सवाल करता है तो ये बिलबिला जाते हैं और फिर उसे जान से मारने, रेप आदि की धमकी देते हैं जैसा की इन मामलों में हुआ है। पहलगाम हमले के बाद संघ की पूरी मशीनरी ने देश में दंगा भड़काने की पूरी कोशिश की लेकिन जनता की एकजुटता ने उसके मंसूबों पर पानी फ़ेर दिया। आज हम मेहनतकश लोगों को ये बात समझ लेना होगा कि साम्प्रदायिकता, दंगा और युद्ध से हमें कुछ हासिल नहीं होगा। हमें अपनी वर्गीय एकजुटता कायम करके संघ और भाजपा के सभी प्रोपैगेण्डा को ध्वस्त करना होगा और उनके गुण्डा गिरोहों को मुँहतोड़ जवाब देना होगा। हमारे दुश्मन देश के बाहर नहीं हैं और न ही हमारे दुश्मन देश के अन्दर किसी धर्म या समुदाय के अल्पसंख्यक लोग हैं। हमारे दुश्मन हमारे ही देश के धन्नासेठ, धनी व्यापारी, धनी कुलक व पूँजीवादी भूस्वामी और इस समूचे पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी का काम करने वाली पूँजीवादी सरकार है, जो आज फ़ासीवादी संघ परिवार के हाथों में है। सवाल धर्म का नहीं है, सवाल वर्ग का है। यही सवाल समझने की ज़रूरत है।

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(तेरहवीं क़िस्त)

● शिवानी

हमने पिछली बारह किश्तों में मज़दूर आन्दोलन में मौजूद अर्थवाद की प्रवृत्ति पर अपनी बात रखी थी। इस बार यहाँ हम इस चर्चा के मुख्य बिन्दुओं का एक संक्षिप्त समाहार प्रस्तुत करेंगे ताकि अगली बार से हम एक नयी प्रवृत्ति पर अपनी बात शुरू कर सकें। **अर्थवाद की प्रवृत्ति मज़दूर आन्दोलन में मौजूद एक बेहद ख़तरनाक और भ्रामक प्रवृत्ति है।** इस प्रवृत्ति पर केन्द्रित अपनी चर्चा के दौरान जो सबसे महत्वपूर्ण बात हमने समझी वह यह है कि अर्थवाद जहाँ एक ओर मज़दूरों को केवल वेतन-भत्तों की आर्थिक लड़ाई के गोल चक्कर में फँसाकर रखता है, वहीं दूसरी ओर वह मज़दूर वर्ग को पूँजीवाद की चौहद्दियों के पार जाने से भी रोकता है। अर्थवाद दरअसल मज़दूरों के लिए आर्थिक संघर्ष को ही, यानी वेतन-भत्तों और बेहतर कार्यस्थितियों के लिए संघर्ष को ही, समस्त आन्दोलन का अन्तिम पड़ाव बना देता है और आन्दोलन की समस्त कार्यवाइयों को केवल आर्थिक संघर्षों की ओर ही संचालित करता है।

अर्थवादी आम तौर पर यह तर्क देते हैं कि मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक चेतना स्वतःस्फूर्त तरीक़े से केवल इन्हीं आर्थिक संघर्षों से पैदा हो जाती है! मज़दूर वर्ग के बीच अलग से राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण के काम की कोई आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि मजदूरों की राजनीतिक मसलों में कोई दिलचस्पी नहीं होती है! अर्थवाद के कारण ही मज़दूर वर्ग राजनीतिक प्रश्न उठाने में, जिसमें राजनीतिक सत्ता का प्रश्न सबसे पहले आता है, असमर्थ हो जाता है और केवल दुवन्नी-अट्ठन्नी, भत्तों-सहूलियतों की लड़ाई के गोल चक्कर में घूमता रहता है। मज़दूर वर्ग एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर संघटित और संगठित हो ही नहीं सकता है अगर उसके संघर्ष का दायरा केवल आर्थिक माँगों तक सीमित रहेगा। इसका मतलब यह नहीं है कि मज़दूर वर्ग आर्थिक माँगों की लड़ाई नहीं लड़ेगा बल्कि इसका अर्थ केवल इतना है कि बतौर एक राजनीतिक वर्ग वह इन आर्थिक संघर्षों को भी राजनीतिक तौर पर लड़ेगा।

मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक लेनिन ने अर्थवाद की विजातीय ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्ति के ख़िलाफ़ एक फैसलाकुन विचारधारात्मक संघर्ष चलाया था और मज़दूर आन्दोलन में सही सर्वहारा अवस्थिति को स्थापित किया था। इस संघर्ष का चरमोत्कर्ष लेनिन की 1902 की रचना **'क्या करें?'** थीं। इसके साथ ही हमने अपनी चर्चा में यह भी देखा था कि अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम सैद्धान्तिक संघर्ष के दौरान ही लेनिन द्वारा **सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा** को भी सूत्रबद्ध किया गया था। अर्थवाद के विरुद्ध चले इस वैचारिक संघर्ष में लेनिन ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया था कि मज़दूर वर्ग एक राजनीतिक वर्ग बन सके, वह अपनी क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में व्यापक मेहनतकश जनता का हिरावल बन सके और उनको नेतृत्व दे सके, इसके लिए उसे अपनी तात्कालिक विशिष्ट आर्थिक माँगों से आगे बढ़कर दीर्घकालिक राजनीतिक माँगों के बारे में भी सोचना होता है और अपने ऐतिहासिक मिशन के बारे में सचेत रहना होता है। यह ऐतिहासिक मिशन है पूँजीवाद का नाश करना और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना। मज़दूर वर्ग यह लक्ष्य केवल अपनी ताक़त के बूते पूरा नहीं कर सकता है बल्कि इसके लिए उसे जनता के अलग-अलग हिस्सों के साथ की ज़रूरत होती है और इसलिए मित्र वर्गों के साथ संश्रय और मोर्चा बनाने की दरकार होती है। अर्थवाद की विशेषता ही यही है कि वह मज़दूर वर्ग को राजनीतिक तौर पर अपंग बना देता है।

हमने अपनी चर्चा के दौरान इस बात को भी समझने का प्रयास किया कि **अर्थवाद की प्रवृत्ति वास्तव में पूँजीवाद के आर्थिक तर्क को ही मज़दूर आन्दोलन में स्थापित करने का काम करती है** और मज़दूरों के केवल वेतन-भत्ते बढ़वाने के लिए संघर्ष की बात पर ज़ोर देते हुए पूँजीवाद के दायरे का अतिक्रमण करने के विचार को ही अजेण्डा से ग़ायब कर देती है। हमने यह भी समझा कि हमारे देश के मज़दूर आन्दोलन में आज जहाँ एक तरफ़ नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियनें अर्थवाद का एक बेहद भोंडा और नंगा क़िस्म का संस्करण प्रस्तुत करती हैं यानी कि अर्थवाद का संशोधनवादी-दक्षिणपन्थी संस्करण पेश करती हैं, वहीं दूसरी तरफ़ कई अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठन जुझारू क़िस्म के अर्थवाद यानी कि "वामपन्थी" अर्थवाद का घोलमट्ठा तैयार करते हुए मिलते हैं।

हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि **अर्थवाद आर्थिक कारकों को राजनीतिक कारकों के ऊपर तरजीह देता है।** यानी यह राजनीति को कमान में रखने की बजाय आर्थिक कारकों को कमान में रखता है। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि अर्थवादियों की कोई राजनीति नहीं होती। दरअसल अर्थवाद की खासियत ही यही है कि वह मज़दूर आन्दोलन को कम्युनिस्ट राजनीति (लेनिन के समय में सामाजिक-जनवादी राजनीति) से भटकाकर ट्रेड यूनियनवादी राजनीति की ओर ले जाता है। हमने इस बात पर भी चर्चा केन्द्रित की थी कि मज़दूर वर्ग स्वतःस्फूर्त रूप से जो चेतना पैदा करता है वह आर्थिक माँगों से आगे नहीं जाती और वह अपने आप में सर्वहारा चेतना नहीं होती। अगर मज़दूरों के बीच पायी जाने वाली इसी स्वतःस्फूर्ततावाद की सोच को आगे बढ़ा दिया जाये तो वह अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद, मज़दूरवाद, पेशावादी संकीर्णतावाद, ग़ैर-पार्टी क्रान्तिवाद, अराजकतावाद-संघाधिपत्यवाद आदि ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्तियों तक चली जाती है। अर्थवाद क्रान्ति के अभिकरण (एजेण्ट) यानी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट राजनीति व क्रान्तिकारी हिरवाल पार्टी की ज़रूरत पर ज़ोर देने की बजाय मज़दूर आन्दोलन के भीतर ट्रेड यूनियनवादी राजनीति पर भी पूरा ध्यान केन्द्रित करता है।

इसके अलावा अर्थवाद की दूसरी विशेषता जिस पर हमने तफ़सील से चर्चा की वह थी अर्थवाद द्वारा मज़दूर वर्ग की **स्वतःस्फूर्तता की पूजा, अन्धभक्ति और उसका अनालोचनात्मक महिमा-मण्डन।** अर्थवाद इस स्वतःस्फूर्तता की पूजा को सिद्धान्त के धरातल तक पहुँचा देता है और सचेतनता के तत्व का व्यावहारिक और सैद्धान्तिक, दोनों ही धरातल पर, विरोध करता है। लेनिन ने स्वतःस्फूर्ततावाद के इस अर्थवादी सिद्धान्त के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष चलाया था और सचेतनता व राजनीति के तत्व की अनिवार्यता पर ज़ोर दिया था। यही कारण था कि लेनिन क्रान्तिकारी पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को अपरिहार्य मानते थे। लेनिन का मानना था कि पार्टी को क्रान्तिकारी जनदिशा लागू करते हुए जनसमुदायों को क्रान्तिकारी नेतृत्व देना होगा, उनसे एक जीवन्त रिश्ता बनाये रखना होगा और इसी प्रक्रिया में जनता से सीखना भी होगा। यानी लेनिन के अनुसार मज़दूर आन्दोलन में सही क्रान्तिकारी राजनीति का प्रवेश वह पूर्वशर्त है जो मज़दूर वर्ग को एक ऐसे राजनीतिक वर्ग में तब्दील करता है जिसकी अपनी राजनीतिक परियोजना है, दूसरे शब्दों में, एक ऐसा वर्ग जिसे राजनीतिक सत्ता चाहिए।

इसी श्रृंखला में लेनिन के हवाले से हमने यह भी जाना था कि रूस में अर्थवादी सैद्धान्तिक तौर पर मज़दूर वर्ग की आकांक्षाओं और संघर्षों को ज़्यादा मज़दूरी और बेहतर कार्यस्थितयों के लिए आर्थिक संघर्षों तक सीमित करते थे और मानते थे कि आगे का राजनीतिक संघर्ष उदार बुर्जुआ वर्ग का कार्य है। वे मज़दूर वर्ग के हिरावल के तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका को भी नकारते थे और मानते थे कि पार्टी को महज़ आन्दोलन की स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया के पीछे चलना चाहिए और अहम घटनाओं को केवल दर्ज करना चाहिए। मज़दूर आन्दोलन में स्वतःस्फूर्तता की पूजा और उसके अधीनस्थ रहने के चलते अर्थवादी क्रान्तिकारी सिद्धान्त, विचारधारा और वर्ग-सचेतनता की अहमियत को ख़ारिज करते थे और दावा करते थे कि समाजवादी विचारधारा अपने आप स्वतःस्फूर्त आन्दोलन के भीतर से पैदा हो जायेगी। कुल मिलाकर, अर्थवादियों का मानना था कि जब आर्थिक परिस्थितियाँ उपयुक्त और अनुकूल हो जाती हैं तो सामाजिक परिवर्तन स्वयं ही हो जाते हैं। यानी कि मज़दूर वर्ग को सचेतन तौर पर संगठित करने और इस काम के लिए लौह अनुशासन में तपी-ढली, अधिकतम सम्भव गुप्त और संगठित हिरावल पार्टी की कोई ज़रूरत नहीं है। मज़दूर वर्ग को महज़ अपने आर्थिक अधिकारों के लिए ट्रेड यूनियनों के तहत संघर्ष करना चाहिए।

अर्थवाद की ख़ासियत ही यह है कि वह राजनीति और अर्थनीति के बीच 'चीन की दीवार' खड़ी कर देता है। अर्थवादियों का प्रायः यह भी मानना होता है कि मज़दूरों की राजनीतिक मुद्दों में कोई दिलचस्पी नहीं होती और राजनीति पार्टी के बौद्धिक नेताओं का काम है। मज़दूरों की रुचि तो केवल उनके आर्थिक हितों की लड़ाई में होती है, यानी कि उन संघर्षों में जो ट्रेड यूनियन के ज़रिये लड़े जाते हैं। इस प्रकार अर्थवाद द्वारा मज़दूर वर्ग की समूची गतिविधि को उसकी ट्रेड यूनियन गतिविधियों तक सीमित कर दिया जाता है; दूसरे शब्दों में, मालिकों के खिलाफ़ बेहतर मज़दूरी और कार्यस्थितियों के लिए संघर्ष तक। ज़ाहिर सी बात है कि यह संघर्ष मौजूदा व्यवस्था के ढाँचे के भीतर ही लड़ा जा सकता है और इसके लिए व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। यानी क्रान्ति की ज़रूरत को ही अर्थवाद द्वारा वस्तुतः ख़ारिज कर दिया जाता है। दरअसल अर्थवाद मज़दूर वर्ग के आन्दोलन और वर्ग संघर्ष को एक प्रकार के ट्रेड यूनियनवाद और छोटे-छोटे धीरे-धीरे होने वाले सुधारों के "यथार्थवादी" संघर्ष तक सीमित करके रख देता है। इसके विपरीत लेनिन का मानना था कि मज़दूर वर्ग की पूरी राजनीति को ट्रेड यूनियन की राजनीति तक सीमित कर देना वास्तव में मज़दूर वर्ग की राजनीति के एक पूँजीवादी संस्करण की बात करना होगा और यह मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ नीति को लागू करने के समान है। लेनिन के लिए आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों के बीच कोई 'चीन की दीवार' नहीं थी, क्योंकि उनके लिए हर आर्थिक संघर्ष भी मूलतः राजनीतिक ही था।

हमने अपनी चर्चा में लेनिन के मार्फ़त इस बात को भी रेखांकित किया था कि विचारधारा का प्रवेश मज़दूर आन्दोलन में बाहर से होता है और यह भी कि आम मज़दूरों द्वारा अपने आन्दोलन की प्रक्रिया के दौरान विकसित किसी "स्वतन्त्र" विचारधारा का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता है। इसलिए केवल दो ही रास्ते बचते हैं, या तो बुर्जुआ विचारधारा को चुना जाये या फिर समाजवादी विचारधारा को चुना जाये। बीच का कोई रास्ता नहीं है क्योंकि "मानव जाति ने कोई "तीसरी" विचारधारा पैदा नहीं की है, और इसके अलावा जो समाज वर्ग अन्तरविरोधों के कारण बँटा हुआ है, उसमें कोई ग़ैर-वर्गीय या वर्गोपरि विचारधारा कभी नहीं हो सकती। इसलिए समाजवादी विचारधारा के महत्व को किसी भी तरह कम करके आँकने, उससे ज़रा भी मुँह मोड़ने का मतलब बुर्जुआ विचारधारा को मज़बूत करना होता है।" लेनिन स्पष्ट शब्दों में इंगित करते हैं कि मज़दूर आन्दोलन में स्वतःस्फूर्तता का परिणाम यह होता है कि आन्दोलन बुर्जुआ विचारधारा के अधीन हो जाता है क्योंकि स्वयंस्फूर्त मज़दूर आन्दोलन ट्रेड-यूनियनवाद होता है और ट्रेड-यूनियनवाद का मतलब मज़दूरों को विचारधारा के मामले में बुर्जुआ वर्ग का दास बनाकर रखना होता है। इसलिए लेनिन कहते हैं कि "हमारा कार्यभार, सामाजिक-जनवादियों का कार्यभार है स्वतःस्फूर्तता के खिलाफ़ लड़ना, मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के उस स्वयंस्फूर्त ट्रेड-यूनियनवादी रुझान को, जो उसे बुर्जुआ वर्ग के साये में ले जाता है, मोड़ना और उसे क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवाद के साये में लाना।"

चूँकि मज़दूर वर्ग के भीतर राजनीतिक चेतना स्वतःस्फूर्त रूप से नहीं पैदा होती है, बल्कि उसमें इस चेतना को पैदा करना एक हिरावल का सचेतन कार्यभार होता है, यही वजह थी कि लेनिन सचेतनता के तत्व और हिरवाल पार्टी की भूमिका पर इतना ज़ोर देते थे। लेनिन का मानना था कि एक सामाजिक-जनवादी यानी कि कम्युनिस्ट की चेतना महज़ एक ट्रेड यूनियन सचिव की नहीं होती, बल्कि मज़दूर वर्ग और आम जनसमुदायों के हिरावल की होती है। लेनिन का यह भी मानना था कि राजनीतिक चेतना मज़दूर वर्ग के भीतर आर्थिक संघर्षों के तीव्र होते जाने से स्वयं ही नहीं पैदा हो जायेगी। किसी बाह्य राजनीतिक अभिकर्ता (यानी, सामाजिक-जनवादी बुद्धिजीवियों या कम्युनिस्ट पार्टी) के हस्तक्षेप के बिना मज़दूर वर्ग अपने आप केवल ट्रेड यूनियन चेतना तक ही पैदा कर सकता है। इसका यह अर्थ क़तई नहीं है कि मज़दूर वर्ग अपने राजनीतिक सिद्धान्तकार नहीं पैदा कर सकता है। यहाँ लेनिन ने स्पष्ट किया कि एक मज़दूर जब आर्थिक संघर्षों से अलग मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक दूरगामी राजनीतिक लक्ष्यों की बात करता है तो वास्तव मे वह महज़ एक सामान्य मज़दूर नहीं होता बल्कि उस वक़्त वह मज़दूर वर्ग के राजनीतिक सिद्धान्तकार की भूमिका

(पेज 14 पर जारी)

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पेज 13 से आगे)

निभा रहा होता है। एक बार यहाँ ग़ौर करने लायक है। वह यह कि एक वर्ग के तौर पर समूचा मज़दूर वर्ग स्वतःस्फूर्त रूप से ऐसी चेतना, यानी कि राजनीतिक वर्ग चेतना, समाजवादी चेतना, को जन्म नहीं दे सकता है। यह समाजवादी चेतना मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में बाहर से ही आती है और यह चेतना इतिहास की वैज्ञानिक समझदारी के साथ मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक अनुभवों के मेल से पैदा होती है।

स्वतःस्फूर्तता और सचेतनता के द्वन्द्व को रेखांकित करते हुए लेनिन कहते हैं कि अर्थवादी रुझान की बुनियादी ग़लती यह है कि वह स्वतःस्फूर्तता की पूजा करती है और यह नहीं समझती है कि जनता की स्वतःस्फूर्तता दरअसल कम्युनिस्टों से और अधिक सचेतनता की माँग करती है। जनसमुदायों में जितना ही अधिक स्वतःस्फूर्त उभार होता है, आन्दोलन का विस्तार जितना ही बढ़ जाता है सामाजिक-जनवाद के सैद्धान्तिक, राजनीतिक, सांगठनिक कामों में चेतना की माँग उतनी ही अधिक अतुलनीय द्रुत गति से बढ़ जाती है। स्वतःस्फूर्तता पर अर्थवादियों का ज़ोर अन्त में इस मंज़िल तक जाता है कि वह किसी भी प्रकार के राजनीतिक हिरावल की भूमिका को ही नकारने लगते हैं क्योंकि उनकी दलील ही यह है कि सर्वहारा वर्ग की आर्थिक कार्रवाइयाँ जैसे कि ट्रेड यूनियन गतिविधियाँ और हड़तालें अन्ततः उन्हें क्रान्ति के लिए तैयार कर देती हैं, जैसी कि हमने ऊपर चर्चा भी की थी।

हमने इस बात पर भी चर्चा की थी कि अर्थवादियों के विरुद्ध लेनिन द्वारा चलाये गये विचारधारात्मक संघर्ष में बोल्शेविकों और मेंशेविकों के बीच होने वाले विभाजन के बीज थे। 1903 में बोल्शेविकों और मेंशेविकों के बीच विभाजन हुआ और इस विभाजन के मूल व केन्द्रीय मुद्दे वास्तव में स्वतःस्फूर्तता और सचेतनता का प्रश्न, कम्युनिस्ट पार्टी की ज़रूरत और उसके सांगठनिक उसूल व ढाँचे, सदस्यता की शर्तें आदि के प्रश्न थे। **'क्या करें?'** में इस बहस को लेनिन ने निर्णायक तौर पर मुक़ाम पर पहुँचाया और उसकी राजनीतिक परिणति 1903 की पार्टी कांग्रेस में हुई।

इसके बाद हमने इस बात पर अपनी चर्चा केन्द्रित की थी कि अर्थवाद के विरुद्ध चली बहस में लेनिन ने किस प्रकार **ट्रेड-यूनियन चेतना/राजनीति और सामाजिक-जनवादी/कम्युनिस्ट चेतना/राजनीति के बीच के फ़र्क को रेखांकित किया था** जो वास्तव में अर्थवाद और क्रान्तिकारी मार्क्सवाद के बीच के अन्तर को ही दिखलाता है। यह फ़र्क समझना हम सभी के लिए आवश्यक है क्योंकि मज़दूर आन्दोलन में इस मुद्दे पर काफ़ी अस्पष्टता दिखलाई पड़ती है। यह ट्रेड-यूनियन के विशिष्ट कार्यभारों और पार्टी की विशिष्ट भूमिका को समझने के लिए भी अनिवार्य है। अपनी रचना **'क्या करें?'** में लेनिन एक जगह कहते हैं कि "क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना क्रान्तिकारी आन्दोलन असम्भव है", और फिर अन्यत्र यह भी कहते हैं कि सामाजिक-जनवादी चेतना या "वर्ग राजनीतिक चेतना" अपने आप स्वतःस्फूर्त तरीक़े से पैदा नहीं हो जाती है बल्कि मज़दूर वर्ग के पास "बाहर से" आती है, जिसकी चर्चा हमने पिछले अंकों में विस्तार से की है। ये दोनों ही लेनिनवादी अवधारणाएँ दरअसल **वर्ग और हिरावल के बीच के सम्बन्ध** को ही दर्शाती हैं।

इसके बाद हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि क्यों लेनिन मज़दूर वर्ग के बीच **राजनीतिक शिक्षा और राजनीतिक चेतना** को विकसित करने के काम की अपरिहार्यता पर ज़ोर देते हैं जो कि कम्युनिस्ट राजनीति को शुद्ध ट्रेड-यूनियनवादी राजनीति से अलग करता है। लेनिन स्पष्ट करते हैं कि राजनीतिक शिक्षा का मतलब मज़दूरों द्वारा महज़ अपने राजनीतिक उत्पीड़न को समझना मात्र नहीं है, वैसे ही जैसे मज़दूरों के लिए यह समझना काफ़ी नहीं है कि उनके हित और मालिकों के हित में परस्पर विरोध है। ज़रूरत इस बात की है कि इस उत्पीड़न की प्रत्येक ठोस मिसाल को लेकर उद्वेलन किया जाये और मज़दूरों की राजनीतिक चेतना को विकसित करने के लिए सर्वांगीण राजनीतिक भण्डाफोड़ संगठित किया जाये। इसके विपरीत अर्थवादियों का मानना था कि आर्थिक संघर्ष ही जनता को राजनीतिक संघर्ष में खींचने का ज़रिया है। लेनिन के अनुसार यह दलील वास्तव में राजनीतिक आन्दोलन को आर्थिक आन्दोलन के पीछे घिसटने की अर्थवादी नसीहत थी। दमन-उत्पीड़न की हर घटना जनता को आन्दोलन में खींचने के लिए पर्याप्त हो सकती है। इसपर सही अवस्थिति यह होनी चाहिए कि आर्थिक संघर्षों को भी अधिक से अधिक व्यापक आधार पर चलाया जाना चाहिए और उनका इस्तेमाल हमेशा और शुरुआत से ही राजनीतिक उद्वेलन के लिए किया जाना चाहिए। इसके विपरीत कोई भी समझदारी दरअसल राजनीति को अर्थवादी ट्रेड-यूनियनवादी जामा पहनाने जैसा है।

हमने अपनी चर्चा के दौरान इस बात की भी शिनाख्त की कि कैसे लेनिन ने अर्थवाद के प्रमुख सिद्धान्तकार और बाद में मेन्शेविकों के नेता मार्तिनोव की अर्थवादी समझदारी को बेनक़ाब किया जब मार्तिनोव द्वारा "आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देने" की अर्थवादी प्रस्थापना पेश की गयी थी। लेनिन कहते हैं कि यह आडम्बरपूर्ण वाक्यांश जो सुनने में "बेहद गम्भीर और क्रान्तिकारी" मालूम पड़ता है "वास्तव में सामाजिक-जनवादी राजनीति को गिराकर ट्रेड-यूनियनवादी राजनीति के स्तर पर ले जाने की परम्परागत कोशिश को छिपाने के लिए आड़ का ही काम करता है!" लेनिन बताते हैं कि आर्थिक संघर्ष कुछ और नहीं बल्कि अपनी श्रम-शक्ति की बिक्री में बेहतर दाम पाने के लिए, जीवन तथा कार्य की स्थितियाँ सुधारने के लिए अपने मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का सामूहिक संघर्ष होता है। यह संघर्ष आवश्यक रूप से पेशागत संघर्ष होता है क्योंकि अलग-अलग पेशों (trade) में कार्यस्थितियाँ अलग-अलग होती हैं और इसलिए इन स्थितियों को सुधारने की लड़ाई हरेक पेशे में उस पेशे के संगठनों यानी कि ट्रेड यूनियन द्वारा ही संगठित की जा सकती है। और मज़दूरों की तमाम ट्रेड यूनियनें ठीक यही करती हैं और हमेशा से यही करती आयी हैं। इसलिए लेनिन कहते हैं कि मार्तिनोव का "आर्थिक संघर्ष को राजनीतिक रूप देने" का यह दावा ऐसे प्रस्तुत किया जा रहा है जैसे कि वह कोई बिलकुल नयी चीज़ हो जबकि इस बड़बोले दावे का मतलब आर्थिक सुधारों के लिए संघर्ष के सिवा और कुछ नहीं है।

अर्थवाद वास्तव में मज़दूर आन्दोलन में सुधारवादी राजनीति का ही एक संस्करण है। अर्थवाद जब यह कहता है कि मज़दूरों की केवल आर्थिक मसलों में ही दिलचस्पी होती है तो वह दरअसल अपनी सुधारवादी राजनीति और वैचारिकी की सीमाओं को ही उजागर कर रहा होता है। ज़ाहिरा तौर पर बिना राजनीतिक हस्तक्षेप के मज़दूर केवल वेतन-भत्ते के लिए संघर्ष में ही उलझे रहेंगे। यह कार्यभार तो हिरावल और सही क्रान्तिकारी राजनीति का है कि वह मज़दूर वर्ग को एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर सोचना सिखाये। यह सबसे बुनियादी लेनिनवादी शिक्षाओं में से एक है कि मज़दूर वर्ग की चेतना उस वक़्त तक सच्ची राजनीतिक चेतना नहीं बन सकती और मज़दूर वर्ग तब तक एक राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित और संघटित नहीं हो सकता है जब तक कि मजदूरों को हर प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न, दमन, हिंसा और अत्याचार का जवाब देना न सिखाया जाये, चाहे उसका सम्बन्ध किसी भी वर्ग से क्यों न हो।

एक और महत्वपूर्ण बिन्दु जिसपर हमने चर्चा केन्द्रित की थी वह था **राजनीतिक प्रचार और उद्वेलन का प्रश्न।** इस प्रश्न पर भी अर्थवादियों का सामाजिक जनवादियों से मतभेद था। जनता के व्यापक हिस्सों का राजनीतिकरण केवल आर्थिक मसलों के ज़रिये ही नहीं होता है बल्कि दमन-उत्पीड़न या आम जनवादी माँगों पर संघर्ष संगठित करके भी होता है या यूँ कहें कि आम तौर पर और इतिहास में भी इन्हीं कारणों से ऐसा अधिक हुआ है। **'क्या करें?'** में लेनिन मार्तिनोव के अर्थवाद को प्रचार और उद्वेलन के मामले में प्रस्तुत की गयी उसकी अवस्थिति के माध्यम से भी उजागर करते हैं। प्लेखानोव द्वारा इस विषय पर पेश किये गये निम्न विचार को ही लेनिन विस्तारित करते हैं: "प्रचारक एक या चन्द व्यक्तियों के समक्ष अनेक विचार पेश करता है, उद्वेलक केवल एक या चन्द विचार पेश करता है, हालाँकि वह उन्हें आम जनता के सामने रखता है।" जिसका कि विकृतीकरण मार्तिनोव द्वारा किया गया था। लेनिन के अनुसार मज़दूर वर्ग के साथ-साथ अन्य सभी वर्गों की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति की सभी विशिष्टताओं का अध्ययन करना कम्युनिस्ट कार्य का बुनियादी अंग है। यानी कि जनता के सभी हिस्सों में प्रचार और उद्वेलन का काम बेहद ज़रूरी है जिसमें कि व्यापक अर्थों में राजनीतिक भण्डाफोड़ सर्वोपरि है।

इसके बाद हमने **राजनीतिक अख़बार की ज़रूरत** पर भी लेनिन के विचारों को प्रस्तुत किया था। राजनीतिक भण्डाफोड़ के लिए आवश्यक एक अखिल-रूसी अखबार का विचार, जो लेनिन सबसे पहले **'कहाँ से शुरुआत करें?'** में व्यक्त करते हैं और **'क्या करें?'** में पुनःरेखांकित करते हैं। लेनिन ज़ोर देकर कहते हैं कि देशव्यापी भण्डाफोड़ का मंच एक अखिल-रूसी अख़बार ही हो सकता है और यह भी कि एक राजनीतिक मुखपत्र के बिना राजनीतिक आन्दोलन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। लेनिन लिखते हैं, "अख़बार न केवल सामूहिक प्रचारक और *सामूहिक उद्वेलक का, बल्कि सामूहिक संगठनकर्ता का भी काम करता है। इस दृष्टि से उसकी तुलना किसी बनती हुई इमारत के चारों ओर बाँधे गये पाड़* (स्कैफोल्डिंग) *से की जा सकती है; इससे इमारत की रूपरेखा प्रकट होती है और इमारत बनाने वालों को एक-दूसरे के पास आने-जाने में सहायता मिलती है, इससे वे काम का बँटवारा कर सकते हैं, अपने संगठित श्रम द्वारा प्राप्त आम परिणाम देख सकते हैं।*" इसकी चर्चा हमने पिछले अंकों में तफ़सील से की है।

इसके साथ ही लेनिन द्वारा एक अखिल-रूसी राजनीतिक अख़बार की ज़रूरत पर बल देना अर्थवादियों के साथ विचारधारतमक संघर्ष में एक बेहद अहम बिन्दु था। यह अर्थवादियों के राजनीतिक गतिविधियों के मामले में संकीर्ण दृष्टिकोण पर क्रान्तिकारी हमला था। अर्थवादी किसी भी अखिल-रूसी उपक्रम या उद्देश्य की वांछनीयता को सिरे से ख़ारिज करते थे और मज़दूर वर्ग एक व्यापक राजनीतिक नज़रिया विकसित कर सके, इस कार्यभार में हर सम्भव रुकावट पैदा करते थे। **दरअसल अखिल-रूसी राजनीतिक अख़बार का लेनिनवादी विचार क्रान्तिकारी पार्टी की अवधारण से सीधे तौर पर जुड़ता है।** लेनिन के लिए पार्टी निर्माण का कार्यभार और एक अखिल-रूसी राजनीतिक अख़बार की योजना वह साझा व सामान्य उद्देश्य और लक्ष्य था, जिससे रूस में क्रान्तिकारी कामों में व्याप्त बिखराव को दूर किया जा सकता था और क्रान्तिकारी गतिविधियों को स्वतःस्फूर्तता के क्षेत्र से बाहर ले जाकर सचेतनता के क्षेत्र में दाखिल कराया जा सकता था।

इसके बाद हमने अपनी चर्चा में **जन संगठन और पार्टी संगठन के बीच के फ़र्क** को समझने की कोशिश की थी जिस फ़र्क को अर्थवादी धूमिल करने का प्रयास करते रहते हैं। वास्तव में जन संगठन और पार्टी संगठन के फ़र्क को न समझना समूचे मज़दूर वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच के अन्तर को नहीं समझना है। कम्युनिस्ट पार्टी के दायरे में मज़दूर वर्ग के सबसे उन्नत, दृढ़ और प्रगतिशील तत्व आते हैं और वे ही पूरे मज़दूर वर्ग समेत आम मेहनतकश जनसमुदायों को उनके संघर्षों में क्रान्तिकारी नेतृत्व दे सकते हैं। मज़दूर वर्ग स्वयं यह कार्य स्वतःस्फूर्त रूप से नहीं कर सकता है और ख़ुद 'सामाजिक जनवादी' या कम्युनिस्ट चेतना तक नहीं पहुँच सकता है जैसा कि हमने बार-बार इंगित किया है। पार्टी संगठन द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण और मार्क्सवादी विचारधारा पर निर्मित होता है जबकि जन संगठन न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर गठित होते हैं, विचारधारा उनकी सदस्यता की कोई शर्त हो ही नहीं सकती है वरना वे सही मायनों में "जन" सगठन होंगे ही नहीं! लेकिन अर्थवाद ठीक इसी बात को नकार देता है। कम्युनिस्ट पार्टी एक जन पार्टी बनकर रह जाती है जिसमें कि हर हड़ताली मज़दूर सदस्य होने की अर्हता रखता है, जैसा कि बाद में मेंशेविकों ने पार्टी सदयस्ता पर अपना मत ज़ाहिर भी किया था।

इसके अलावा ट्रेड यूनियन समूची मेहनतकश जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती है, यह काम केवल पार्टी ही कर सकती है क्योंकि वह "सिद्धान्तकारों के रूप में, प्रचारकों, उद्वेलनकर्ताओं और संगठनकर्ताओं के रूप में" आबादी के सभी वर्गों के बीच जाती है। इस रूप में कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक और विचारधारात्मक रूप से सबसे उन्नत तत्वों का दस्ता और उनका क्रान्तिकारी केन्द्र/हेड क्वार्टर होती है और समस्त जनसमुदायों का प्रतिनिधित्व करती है। लेनिन लिखते हैं, "मज़दूरों के संगठन को एक तो ट्रेड यूनियन संगठन होना चाहिए; दूसरे उसे अधिक से व्यापक संगठन होना चाहिए; तीसरे उसके लिए ज़रूरी होता है कि वह कम से कम गुप्त हो। इसके विपरीत क्रान्तिकारियों के संगठन को सबसे पहले और मुख्यतया ऐसे लोगों का संगठन होना चाहिए, जिन्होंने क्रान्तिकारी कार्य को अपना पेशा बना लिया हो। और चूँकि यह विशेषता ऐसे संगठन के सभी सदस्यों में होनी चाहिए, इसलिए यह आवश्यक है कि न केवल मज़दूरों और बुद्धिजीवियों के बीच फ़र्क, बल्कि अलग-अलग व्यवसायों और पेशों का सारा अन्तर भी एकदम ख़त्म कर दिया जाए। ऐसे संगठन के लिए यह ज़रूरी है कि वह बहुत फैला हुआ न हो तथा अधिक से अधिक गुप्त हो।"

ट्रेड यूनियन या फिर किसी भी अन्य जन संगठन में विचारधारा को सदस्यता की पूर्वशर्त नहीं बनाया जा सकता है।

(पेज 15 पर जारी)

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पेज 14 से आगे)

ऐसा करना जन संगठनों के "जन" चरित्र का मखौल उड़ाने के समान होगा और जन संगठनों के काम करने के दायरे को संकुचित करेगा और जनता के बीच क्रान्तिकारियों के राजनीतिक प्रभाव को भी कम करेगा। यानी जन संगठनों के भीतर क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी का ब्लॉक काम करता है, उसी प्रकार जैसा ट्रेड यूनियनों के भीतर सामाजिक जनवादी मज़दूर (यानी कि कम्युनिस्ट) काम करते हैं। इसके साथ ही लेनिन यह भी बताते हैं कि जन संगठन, अपवादस्वरूप स्थितियों को यदि छोड़ दिया जाए, तो खुले तौर पर ही काम करते हैं और यही वांछनीय भी है। इसके विपरीत क्रान्तिकारियों का संगठन यानी कि कम्युनिस्ट पार्टी पूरी की पूरी खुली और क़ानूनी दायरे में काम करने वाला संगठन नहीं होती है। जन संगठन, अपनी परिभाषा से ही, गुप्त संगठन नहीं हो सकते हैं, उल्टे, इन्हें अधिकतम सम्भव व्यापक होने की दरकार होती है।

लेनिन यहीं पर पेशेवर क्रान्तिकारी की अवधारणा को लाते हैं जिसके बिना लेनिनवादी बोल्शेविक पार्टी की बात करना अकल्पनीय है। पेशेवर क्रान्तिकारियों से लेनिन का अभिप्राय ऐसे कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं से है जो पार्टी और क्रान्ति के काम के अलावा और सभी कामों से आज़ाद हों और जिनके पास आवश्यक सैद्धान्तिक ज्ञान यानी मार्क्सवादी दर्शन और विज्ञान की समझ हो, राजनीतिक अनुभव हो और संगठन का अभ्यास हो।

हमने अपनी चर्चा में यह भी देखा कि **सांगठनिक प्रश्न पर भी अर्थवादियों की स्वतःस्फूर्तता की पूजा करने की प्रवृत्ति** होती है। अर्थवाद सम्पूर्ण क्रान्तिकारी कार्य का दायरा इतना संकुचित और संकीर्ण बना देता है कि क्रान्तिकारियों के अलग संगठन की ज़रूरत ही वस्तुगत तौर पर ख़ारिज हो जाती है। रूसी अर्थवादी इस संकीर्णता को उचित और वैध ठहराने के लिए इसे एक विशेष "सिद्धान्त" के स्तर पर पहुँचाने की कोशिश कर रहे थे। इसका अर्थ यह हुआ कि मज़दूर आन्दोलन में व्याप्त अर्थवाद का केवल राजनीतिक कार्यभारों के प्रति ही संकुचित नज़रिया नहीं होता है बल्कि सांगठनिक कार्यभारों के प्रति भी यह दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है। अर्थवादी चूँकि सांगठनिक मामलों में भी स्वतःस्फूर्तता के ही पुजारी होते हैं इसलिए संगठन के स्वतःस्फूर्त ढंग से विकसित होते रूपों को ही वांछनीय मानते हैं। लेनिन ने इसे सांगठनिक मामलों में अर्थवादियों के नौसीखुएपन की संज्ञा दी थी। यह नौसिखुआपन, लेनिन के अनुसार, केवल प्रशिक्षण के अभाव को नहीं दिखलाता है, बल्कि यह नौसिखुआपन आम तौर पर क्रान्तिकारी संगठन की गतिविधियों के दायरे को संकुचित करने के मामले में भी नज़र आता है।

मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक लेनिन ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि राजनीतिक मामलों में पिछड़ेपन, पुच्छलतावाद और स्वतःस्फूर्ततावाद की हिमायत करने वाली और सांगठनिक मामलों में संकुचित और पिछड़ी क़िस्म की समझदारी रखने वाली हर प्रवृत्ति के विरुद्ध डटकर लड़ना बेहद ज़रूरी है, जिसका प्रतिनिधित्व मज़दूर आन्दोलन में अर्थवादी करते हैं। सांगठनिक गतिविधियों के मामले में पैदा हुई यह संकीर्णता तब तक दूर नहीं की जा सकती जब तक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट अर्थवाद को आम तौर पर दूर नहीं करते। लेनिन की शिक्षाओं का अनुसरण करते हुए यदि हम आज के समय में भी अर्थवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष चलाते हैं तो मज़दूर आन्दोलन में गतिरोध की स्थिति तोड़ने का एक रास्ता निकाल सकता है। उस सूरत में क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनें न केवल आर्थिक संघर्ष को विकसित और मज़बूत करने के लिए बेहद क़ीमती साबित हो सकती हैं, बल्कि राजनीतिक उद्वेलन और क्रान्तिकारी संगठन के लिए भी बहुत आवश्यक सहायक बन सकती हैं। इस मक़सद को हासिल करने के लिए और ट्रेड यूनियन आन्दोलन को क्रान्तिकारी सर्वहारा राजनीति की वांछित दिशा में ले जाने के लिए हमें सबसे पहले अर्थवाद की सीमाओं को समझना होगा, उन्हे उजागर करना होगा और उसके खिलाफ़ विचारधारात्मक और व्यावहारिक, दोनों ही स्तरों पर संघर्ष को निर्देशित करना होगा। यह आज के दौर में क्रान्तिकारी शक्तियों के समक्ष एक बेहद आवश्यक कार्यभार है।

(जारी)

ट्रम्प और उसके टैरिफ़

● अपूर्व मालवीय

पिछली 2 अप्रैल 2025 को अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने 90 से ज़्यादा देशों पर टैरिफ़ लगा दिया! डोनाल्ड ट्रम्प का कहना था कि ये देश अमेरिका को लूट रहे थे! "बस अब और नहीं" के नारे के साथ ट्रम्प ने 'रेसिप्रोकल टैरिफ़' की घोषणा कर दी। 'रेसिप्रोकल टैरिफ़' का मतलब है 'जैसे को तैसा' ! यानी जो देश अमेरिकी सामानों पर जितना ज़्यादा टैरिफ़ लगायेंगे अमेरिका भी उनके ऊपर उतना ही टैरिफ़ लगायेगा ! ट्रम्प की इस घोषणा से दुनियाभर के बाज़ारों में तहलका मच गया! ट्रम्प की इस टैरिफ़ नीति की कई देशों ने खुलकर आलोचना की और जवाब में अमेरिका के उत्पादों पर भी टैरिफ़ बढ़ाया। चीन से अमेरिका का टैरिफ़ वॉर ही शुरू हो गया! लेकिन ट्रम्प टैरिफ़ के इस 'जैसे को तैसा' वाले खेल को समझने से पहले ये जान लेते हैं कि टैरिफ़ क्या है और ये क्यों लगाया जाता है तथा इसके लगने से क्या - क्या सम्भावित परिणाम सामने आ सकते हैं।

टैरिफ़ एक तरह का 'आयात शुल्क' ही है जो कोई देश दूसरे देशों से आने वाले मालों पर लगाता है। जैसे मान लीजिए कि जापान से कोई जूता भारत आता है जिसकी कीमत 100 रुपये है। अगर भारत सरकार उस पर 25% टैरिफ़ लगा दे, तो उसकी कीमत 125 रुपये हो जायेगी। टैरिफ़ लगाने का मक़सद भारत के लिए दो तरीके से फायदेमन्द हो सकता है। पहला, उसके राजस्व में बढ़ोत्तरी होगी (विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ेगा)। दूसरा उसके अपने देश के जूता उद्योग को संरक्षण प्राप्त होगा। इससे भारत का जूता उद्योग जापानी जूते की तुलना में अपनी कीमत को बाज़ार में प्रतिस्पर्धी बनाए रख सकता है। सभी देश किसी न किसी रूप में टैरिफ़ की व्यवस्था को लागू करते हैं। लेकिन ये टैरिफ़ वॉर (युद्ध) के रूप में तब बदल जाता है जब कोई देश किसी देश पर मनमाने टैरिफ़ लगाना शुरू करता है और दूसरा देश भी जवाबी कार्यवाही में टैरिफ़ बढ़ाना शुरू कर देता है। जब तक बाज़ार एक बँधे-बँधाये नियम के तहत चलता रहता है तब तक कोई गड़बड़ी नही दिखायी देती है लेकिन इस तरह के मनमाने टैरिफ़ से सारा उत्पादन-वितरण, आयात-निर्यात गड़बड़ाने लगता है और मँहगाई, उत्पादन का संकट और रोज़गार का संकट पैदा होने लगता है। इसको फिर से उसी जापानी जूते के उदाहरण से समझते हैं। जैसे भारत आने वाला जापानी जूता 100 रुपये की कीमत का है। लेकिन अचानक से भारत सरकार उस पर मनमाना 100% टैरिफ़ लगा देती है। तब उस जापानी जूते की कीमत 200 रुपये हो जायेगी। ऐसे में इसकी पहली सम्भावना ये है कि इस जापानी जूते की भारत में बिक्री बहुत घट जाये ! इसका माल डम्प पड़ जाए, इसकी फैक्ट्री के उत्पादन को कम करना पड़े जिससे वहाँ के मज़दूरों की छँटनी हो। इस जूते के उत्पादन से जुड़े विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोज़गार प्रभावित हो। दूसरी सम्भावना ये है कि ये जापानी कम्पनी भारत को छोड़कर किसी दूसरे बाज़ार की तलाश करे! दूसरे देशों में अपने नये खरीदार तलाशे! लेकिन इस दूसरे पहलू की भी कई जटिलताएँ हैं। ये इतना आसान भी नहीं है। ये समय लेने वाला और एक लम्बी प्रक्रिया का हिस्सा है। इसलिए तात्कालिक तौर पर जापानी कम्पनी के लिए ये ज्यादे फायदेमन्द होगा कि वो भारत से ही टैरिफ़ कम करने के लिए कोई समझौता करे।

ट्रम्प की इस टैरिफ़ नीति पर फिर से वापस आते हैं। असल में ट्रम्प की ये टैरिफ़ नीति कोई अचानक से आने वाला विचार नहीं है बल्कि यह लम्बे समय से ट्रम्प के चुनावी प्रचार अभियानों का मुख्य मुद्दा रहा है। अमेरिका के बढ़ते आर्थिक संकट और रोज़गार संकट के बीच इस टैरिफ़ नीति को लागू करने का समर्थन करने वाले लोग ट्रम्प के कोर वोट बैंक हैं। ट्रम्प लगातार यह प्रचार करते आया है कि विदेशी आयात, खासकर चीन जैसे देशों से अमेरिकी विनिर्माण, उद्योगों और नौकरियों को नुकसान पहुँचा है। टैरिफ़ के जरिए आयातित सामान को महँगा करके स्थानीय उद्योगों को प्रतिस्पर्धी लाभ दिलाया जा सकता है। यहाँ तक कि टैरिफ़ से आयात कम करके, और निर्यात को बढ़ावा देकर अमेरिका का व्यापार घाटा कम किया जा सकता है। ट्रम्प की इस नीति को अमेरिका के उन राज्यों में मजबूत समर्थन मिल रहा है, जहाँ विनिर्माण और औद्योगिक इकाईयाँ हैं! जैसे मिडवेस्ट के औद्योगिक "रस्ट बेल्ट" क्षेत्र (पेंसिल्वेनिया, ओहायो, मिशिगन) ! यह क्षेत्र ट्रम्प की 'अमेरिका फर्स्ट' नीति का भी हिस्सा है। हालाँकि टैरिफ़ से अमेरिका के उपभोक्ताओं को नुकसान भी हुआ है। उस पर महँगाई का दबाव पड़ा है। कार, इलेक्ट्रॉनिक्स और रोज़मर्रा की वस्तुओं की कीमतें बढ़ीं हैं!

चीन ने भी जवाबी टैरिफ़ लगाकर अमेरिकी मक्का, सोयाबीन, पोर्क और अन्य कृषि उत्पादों का आयात कम कर दिया। इससे अमेरिका के मध्य-पश्चिमी राज्यों (आयोवा, इलिनॉय) के किसानों को नुकसान हुआ, जो पहले ट्रम्प के समर्थक थे। यह ट्रम्प के राजनीतिक वोट बैंक पर एक तरह का हमला भी था! असल में अमेरिका से आने वाले मक्का और सोयाबीन जैसी फसलें चीन के 44 करोड़ सुअरों का भोजन हैं। अब चीन के सुअर अमेरिका का सोयाबीन खायें या ब्राजील का, (चीन ने ब्राजील से सोयाबीन आयात करना शुरु कर दिया है) इससे उनकी सेहत पर क्या ही असर पड़ेगा! हाँ, आयात कम हो जाने से अमेरिकी किसान ट्रम्प से तो ज़रूर ही नाराज़ हो गये हैं और उनकी आर्थिक सेहत पर असर तो पड़ा ही है!

असल में ट्रम्प को ये उम्मीद नहीं थी कि चीन उसके टैरिफ़ का उसी तरह से टैरिफ़ बढ़ाकर जवाब देगा! चीन से अमेरीका का टैरिफ़ वॉर 2018 से ही चला आ रहा है। जो अपने पहले कार्यकाल में ट्रम्प द्वारा ही लगाया गया था। इसे बाइडन प्रशासन ने भी जारी रखा था। लेकिन इस बार चीन ने भी इस पर कड़ी प्रतिक्रिया देते हुए जवाबी टैरिफ़ लगाना शुरू कर दिया। ट्रम्प ने बाकी देशों को 90 दिन की छूट देते हुए 'रेसिप्रोकल टैरिफ़' घटाकर 10 फ़ीसदी कर दिया जबकि चीन के ऊपर पहले 34%, फ़िर 50%, फ़िर 84% और फ़िर 125% तक बढ़ा दिया!लेकिन उसका यह दाँव उल्टा पड़ता नज़र आ रहा है। क्योंकि 2018 में टैरिफ़ लगने के बाद से चीन ने अपनी निर्यात नीति को एक हद तक बदला है। एक तरफ़ चीन अपनी अर्थव्यवस्था को घरेलू खपत की ओर मोड़ रहा है और दूसरी तरफ़ नए निर्यातक बाज़ारों की तलाश कर रहा है। अफ़्रीका से लेकर दक्षिण एशिया जैसे देशों में निवेश करके अपनी स्थिति को मजबूत कर रहा है। चीन से अमेरिकी आयात में कमी आयी है। 2016 में जहाँ यह कुल अमेरीकी आयात का 21% था वहीं पिछले साल यह गिरकर 13% हो गया है। इसके साथ ही चीन ने कुछ दूसरे रास्तों की तलाश की है जहाँ से अप्रत्यक्ष तौर पर वह अपने उत्पादों को अमेरिका भेजता है। उदाहरण के लिए ट्रम्प ने चीन से आयात किये जाने वाले सोलर पैनल पर 2018 में 30% टैरिफ़ लगाने की घोषणा की। बाद में अमेरिकी कॉमर्स डिपार्टमेण्ट ने 2023 में इस बात के सबूत पेश किये कि चीन के सोलर पैनल निर्माताओं ने मलेशिया, थाईलैण्ड, कम्बोडिया और वियतनाम जैसे देशों में अपनी असेम्बली स्थापित कर ली और उन देशों के रास्ते उत्पादों को अमेरिका भेजा! इस तरह से चीन की कम्पनियाँ टैरिफ़ के प्रभावों से बच निकलीं!

अब ये टैरिफ़ वॉर खेलते-खेलते बीते 11- 12 मई को अमेरिका और चीन के बीच जेनेवा में मैराथन व्यापार वार्ताओं के बाद एक समझौता हुआ है। अमेरिका ने चीनी सामानों पर टैरिफ़ को 145% से घटाकर 30% करने पर सहमति जताई है। वहीं चीन ने भी अमेरिकी आयात पर टैरिफ़ को 125% से घटाकर 10% करने का वादा किया है। यह कटौती 90 दिनों के लिए लागू होगी, जिसके बाद दोनों पक्ष स्थिति की समीक्षा करेंगे। इस पूरे टैरिफ वॉर से यह समझा जा सकता है कि अमेरिका की टैरिफ़ नीति उसके आर्थिक और भू-राजनीतिक वर्चस्व को बनाये रखने की कोशिश के साथ साथ अमेरिका के अन्दर ट्रम्प के राजनीतिक पकड़ को भी बढ़ाने की एक कोशिश है और साथ ही चीनी अर्थव्यवस्था को भी कमज़ोर करने और उसके व्यापार को नियन्त्रित करने का एक प्रयास है। लेकिन चीन ने जिस तरह से अपने आर्थिक आयात-निर्यात नीतियों में व्यापक बदलाव किया है, उससे नहीं लगता है कि अमेरिका चीन की अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभावी असर डाल पायेगा। हाँ, ये ज़रूर है कि बीच-बीच में ये टैरिफ वॉर (ट्रम्प की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं और वोट बैंक के चलते) चलता रहे और वैश्विक पैमाने पर कुछ छोटे बड़े आर्थिक-राजनीतिक समीकरण बनते बिगड़ते रहें।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 26

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय – 1 (जारी)

पूँजी के परिपथ (सर्किट)

● अभिनव

तीसरा चरण (माल' –मुद्रा' या C' – M')

मुद्रा पूँजी के परिपथ का तीसरा चरण माल-पूँजी के वापस मुद्रा-पूँजी में तब्दील होने का चरण होता है। इसके साथ पूँजीपति की निवेशित पूँजी बेशी मूल्य से लदकर वापस मुद्रा-रूप में पूँजीपति के पास वापस आ जाती है। इस चरण के पूरा हुए बिना पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया जारी नहीं रह सकती है। पूँजी के परिपथ में वह माल-पूँजी, उत्पादक-पूँजी और मुद्रा-पूँजी तीनों ही रूपों से गुज़रती है, लेकिन वास्तविक पूँजीवादी उत्पादन में इसकी शुरुआत हमेशा मुद्रा-पूँजी के साथ ही होती है और ऐसा ही हो भी सकता है क्योंकि पूँजीपति को मुद्रा-पूँजी लगाकर ही बाज़ार में मौजूद उत्पादन के साधनों को अन्य पूँजीपतियों से और श्रम-बाज़ार में मौजूद श्रमशक्ति को मज़दूरों से ख़रीदना होता है। इसके बिना उसके हाथों में उत्पादक-पूँजी के तत्व नहीं आ सकते और न ही पूँजीवादी उत्पादन की शुरुआत होती है।

लेकिन इन उत्पादित मालों को कौन-सी चीज़ माल-*पूँजी* बनाती है? माल-पूँजी वास्तव में माल के रूप में ही मौजूद होती है। वह कौन-सी चीज़ है जो इस माल को साधारण माल से अलग माल-पूँजी का चरित्र देती है? यानी, एक ही माल का उत्पादन करने वाले साधारण माल-उत्पादक के माल और एक पूँजीवादी उत्पादक के माल में भौतिक गुणों के आधार पर तो कोई अन्तर नहीं होता। दोनों ही एक निश्चित प्रकार के उपयोग-मूल्य की नुमाइन्दगी करते हैं। दोनों को ही अपने मूल्य के वास्तवीकरण के लिए, यानी अपने मूल्य के मुद्रा-रूप ग्रहण करने के लिए बिकवाली की आवश्यकता होती है। ऐसे में, वह कौन-सी चीज़ है जो पूँजीपति के माल को माल-पूँजी का स्वरूप देती है, जबकि एक साधारण माल-उत्पादक का माल एक साधारण माल ही रहता है?

पूँजीपति का माल उसकी पूँजी का एक विशिष्ट रूप यानी माल-पूँजी इसलिए है क्योंकि वह बेशी मूल्य से लैस है। दूसरे शब्दों में, वह पूँजीवादी उत्पादन-प्रक्रिया से गुज़र चुका है, जिसके दौरान उसमें उत्पादन में ख़र्च हुए उत्पादन के साधनों का मूल्य तो स्थानान्तरित हुआ है, साथ ही मज़दूरों ने अपने जीवित श्रम के ज़रिये उसमें नया मूल्य भी पैदा किया है, जो स्वयं मज़दूरों की श्रमशक्ति के कुल मूल्य से ज़्यादा है। यह माल भौतिक तौर पर किसी भी अन्य साधारण माल के समान होने के बावजूद *सारभूत रूप में* उनसे अलग है क्योंकि उसके मूल्य में बेशी मूल्य शामिल है और वह *बेशी मूल्य के उत्पादन यानी पूँजीवादी उत्पादन* की प्रक्रिया से गुज़र चुका है। बेशक़ माल के रूप में वह संचरण के क्षेत्र में वही कार्य कर सकता है जो कोई भी माल करता है : यानी, ख़रीद व बिकवाली की प्रक्रिया से गुज़रकर अपने आपको मुद्रा में तब्दील कर लेना। लेकिन इसके बावजूद वह अन्य साधारण मालों से अलग है क्योंकि वह अपने आपको मुद्रा की जिस राशि में तब्दील कर रहा है, उसमें पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया में पैदा बेशी मूल्य भी शामिल है। ऐसा इसलिए है कि माल रूप में वह पहले ही इस बेशी मूल्य से उत्पादन की प्रकिया में लैस हो चुका है। अगर पूँजीवादी समाज में समस्त उत्पादन पूँजीवादी उत्पादन होता और समस्त माल वस्तुत: माल-पूँजी का रूप ग्रहण कर चुके होते तो यह प्रश्न बेहद सरल हो जाता। लेकिन वास्तव में उन्नत से उन्नत पूँजीवादी समाज में भी किसी न किसी रूप और मात्रा में साधारण माल उत्पादन जारी रहता है और मालों की एक अपेक्षाकृत छोटी मात्रा साधारण माल उत्पादकों द्वारा उत्पादित माल के तौर पर भी संचरण के क्षेत्र में प्रवेश करती है। इसलिए यह प्रश्न अहम बन जाता है कि माल-पूँजी की विशिष्टताओं को समझा जा सके। बाद में हम देखेंगे कि मूल्यों के क़ीमतों में रूपान्तरण के लिए भी यह फ़र्क करना अनिवार्य होता है। इसलिए अभी साधारण-सा या कुछ को अनावश्यक दिख रहा यह फ़र्क आगे एक महत्वपूर्ण अन्तर साबित होता है।

तीसरे चरण में पूँजी जिस काम को अंजाम दे रही होती है, या जिस प्रक्रिया से गुज़र रही होती है, उसमें और साधारण माल उत्पादन के पहले चरण में अंजाम दिये जाने वाले काम में कोई अन्तर नहीं होता है। यह काम है : C – M यानी 'माल – मुद्रा' रूपान्तरण। लेकिन आम तौर पर माल संचरण में होने वाली यह प्रक्रिया यहाँ वास्तव में माल-पूँजी के माल से मुद्रा-रूप ग्रहण करने की परिचायक है। यानी अपने आप में संचरण की यह प्रक्रिया यानी C – M वह कारक नहीं है जो माल को माल-पूँजी का रूप दे रही है। संचरण की यह कार्रवाई आम तौर पर माल संचरण में होती है और अपने आप में यह नहीं बताती कि माल वास्तव में माल-पूँजी का प्रतिनिधित्व करता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "वह कौन-सी चीज़ है जो समस्त माल संचरण की इस साधारण कार्रवाई को ठीक उसी समय पूँजी का प्रकार्य बना देती है? यह इस कार्रवाई में हुआ बदलाव नहीं हो सकता, न तो इसके उपयोगी चरित्र के सन्दर्भ में, क्योंकि उपयोग की वस्तु के रूप में ही माल ख़रीदार के पास जाता है, और न ही इसके मूल्य के सन्दर्भ में, क्योंकि इसकी मात्रा में कोई बदलाव नहीं आता है, बस उसके रूप में बदलाव आता है। पहले यह सूत के रूप में मौजूद था, और अब यह मुद्रा के रूप में मौजूद है। इसलिए पहले चरण M – C और अन्तिम चरण यानी C – M में एक मूलभूत अन्तर है। पहले निवेश की गयी मुद्रा मुद्रा पूँजी के रूप में काम कर रही थी क्योंकि संचरण के ही ज़रिये उसे विशिष्ट उपयोग-मूल्य रखने वाले मालों में तब्दील किया गया था। अब माल स्वयं पूँजी के रूप में केवल उसी हद तक काम कर सकता है जिस हद तक वह इस चरित्र को वास्तव में **उत्पादन की प्रक्रिया** से ही लेकर आता है, यानी संचरण की प्रक्रिया फिर से शुरू होने के भी पहले।" (*वही*, पृ. 122, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

मार्क्स के उदाहरण में, जिसका हम अब तक इस्तेमाल करते आये हैं, पूँजीपति 372 पाउण्ड पूँजी का इस्तेमाल उत्पादन के साधन ख़रीदने में करता है, 50 पाउण्ड मज़दूरों की श्रमशक्ति को ख़रीदने में लगाता है। यह M – C का चरण था, जिसमें पूँजीपति अपनी मुद्रा-पूँजी M का इस्तेमाल उत्पादन के लिए आवश्यक मालों यानी C को ख़रीदने में करता है, जिसके दो तत्व हैं : श्रमशक्ति (L) और उत्पादन के साधन (mp)। ख़रीदे जाने के बाद ये ही माल उत्पादन की प्रक्रिया में P यानी उत्पादक-पूँजी के तत्व में तब्दील हो जाते हैं। उत्पादन की प्रक्रिया में मज़दूर पहले अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करते हैं और फिर उसके ऊपर बेशी मूल्य पैदा करते हैं। बताने की आवश्यकता नहीं है कि इसी प्रक्रिया में वे उत्पादन के साधनों के मूल्य को ज़्यों का त्यों उत्पादित माल में स्थानान्तरित भी करते हैं। मार्क्स के उदाहरण में मज़दूर 78 पाउण्ड के बराबर बेशी मूल्य का उत्पादन करते हैं। यानी, कुल नया मूल्य जो जोड़ा गया वह है 128 पाउण्ड। नतीजतन, उत्पादित माल, हमारे उदाहरण में 10,000 एल.बी. सूत, का कुल मूल्य हो जाता है 500 पाउण्ड जिसमें से 372 पाउण्ड के बराबर स्थिर पूँजी और 50 पाउण्ड के बराबर परिवर्तनशील पूँजी है और उत्पादित माल में यह कुल निवेशित 8,440 एल.बी. सूत का प्रतिनिधि करती है। जबकि 78 पाउण्ड के बराबर बेशी मूल्य उत्पादित माल में 1,560 एल.बी. सूत का प्रतिनिधित्व करता है। यानी, उत्पादित माल C' में मूल निवेशित पूँजी 422 पाउण्ड के अलावा, जो M (मुद्रा पूँजी) के और साथ ही P (उत्पादक पूँजी) के बराबर है [M और P का मूल्य बराबर ही होता है], 78 पाउण्ड के बराबर मूल्य का बेशी मूल्य भी माल के रूप में शामिल है। यानी, यह बेशी मूल्य से लदा हुआ माल है, या C' है, जहाँ,

C' = C + c

c यहाँ माल के रूप में बेशी मूल्य की नुमाइन्दगी करता है जबकि C माल के रूप में मूल निवेशित पूँजी के बराबर मूल्य की नुमाइन्दगी करता है। यानी, 10,000 एल.बी. सूत का मूल्य C और c के योग के बराबर है। जैसा कि आप देख सकते हैं कि यह उत्पादित माल का निरपेक्ष मूल्य यानी 500 पाउण्ड नहीं है जो C को C' बना देता है। क्योंकि माल का मूल्य यहाँ भी उसी प्रकार निर्धारित हो रहा है, जैसे किसी भी माल का मूल्य निर्धारित होता है। यानी, उसमें लगे कुल अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष श्रम के योग से। यह इस उत्पादित माल के मूल्य का उत्पादन से पहले ख़रीदे गये और उत्पादन के दौरान ख़र्च हुए उत्पादन के तत्वों के कुल मूल्य से रिश्ता है, जो C को C' में तब्दील करता है। यह उत्पादित माल के मूल्य का उत्पादक पूँजी के तत्वों के कुल मूल्य की तुलना में सापेक्षिक परिमाण है, जो निर्दोष और निरीह से दिख रहे मालों को माल-पूँजी में तब्दील करता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "इसमें निहित मूल्य उत्पादक पूँजी द्वारा पैदा बेशी मूल्य और मूल्य का योग है। इसका मूल्य अधिक है, यानी यह पूँजी-मूल्य P से बेशी मूल्य यानी c के अन्तर से ज़्यादा है। 10,000 एल.बी. सूत एक ऐसे पूँजी-मूल्य का वाहक है जिसमें मूल्य-संवर्धन हो चुका है, और ऐसा इसलिए है क्योंकि यह पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया का उत्पाद है। C' एक मूल्य अनुपात को अभिव्यक्त करता है, यानी माल के रूप में मौजूद उत्पाद के मूल्य और उसके उत्पादन में ख़र्च हुई पूँजी के मूल्य के अनुपात को, यानी यह पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य के अनुपात के रूप में इसके मूल्य के संघटन को अभिव्यक्त करता है। 10,000 एल.बी. सूत केवल उत्पादक पूँजी P के रूपान्तरित रूप के तौर पर ही माल-पूँजी C' है, और इस प्रकार एक ऐसे सम्बन्ध में अस्तित्वमान है जो पहले इस विशिष्ट पूँजीपति के परिपथ में मौजूद है, या उस पूँजीपति के लिए जिसने अपनी पूँजी से सूत का उत्पादन किया है। यानी यह एक आन्तरिक सम्बन्ध है, न कि कोई बाह्य सम्बन्ध जो 10,000 एल.बी. सूत को मूल्य के वाहक के रूप में माल-पूँजी में तब्दील कर देता है। इस सूत का पूँजीवादी जन्म-चिह्न इसके मूल्य की निरपेक्ष मात्रा में नहीं प्रकट होता है, बल्कि इसकी सापेक्षिक मात्रा में प्रकट होता है, यानी इसके मालों में तब्दील होने से पहले इसमें निहित उत्पादक पूँजी के मूल्य की तुलना में इसके मूल्य की मात्रा में प्रकट होता है।" (*वही*, पृ. 123, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

यह पहली बात है जिसे मुद्रा पूँजी के परिपथ के इस तीसरे चरण पर विचार करते हुए समझना अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में, यह समझना कि उत्पादित मालों की यह मात्रा किसी भी साधारण माल उत्पादक के मालों से भिन्न माल-पूँजी है क्योंकि यह पूँजीवादी उत्पादन-प्रक्रिया से गुज़र कर बेशी मूल्य से लैस हो चुकी है। यह माल का निरपेक्ष मूल्य नहीं है जो उसे माल-पूँजी में तब्दील करता है, बल्कि उसका सापेक्षिक मूल्य, यानी मूल निवेशित पूँजी के मूल्य की तुलना में उसमें हुई बेशी मूल्य की बढ़ोत्तरी है जो उसे माल-पूँजी में तब्दील करता है। साथ ही, यह बिकने की प्रक्रिया भी नहीं है जो उसे माल-पूँजी में तब्दील करती है, क्योंकि वह किसी भी साधारण माल के ही समान बिकता है और मुद्रा-रूप ग्रहण करता है। माल को माल-पूँजी में तब्दील उसमें निहित बेशी मूल्य करता है।

इसके बाद हम मुद्रा-पूँजी के सर्किट के तीसरे चरण में प्रस्तुत होने वाले दूसरे प्रश्न पर आते हैं। जैसा कि हम पहले ही ज़िक्र कर चुके हैं, किसी भी माल की तरह माल के रूप में पूँजी भी वही प्रकार्य कर सकती है, जो कि माल पूरे करता है, यानी *बिकना या मुद्रा-रूप ग्रहण करना*। यानी

(पेज 17 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 16 से आगे)

किसी भी माल की तरह माल-पूँजी को भी माल संचरण के इस चरण, यानी C – M से गुज़रना ही होता है। जिस प्रकार मुद्रा के रूप में पूँजी उन्हीं कार्यों को अंजाम दे सकती है जिन्हें मुद्रा देती है, उसी प्रकार माल के रूप में भी पूँजी उन्हीं कार्यों को पूरा कर सकती है जिन्हें माल पूरा करता है। मुद्रा या माल अपने आप में पूँजी नहीं होते, बल्कि वे बेशी मूल्य के उत्पादन के साथ ही पूँजी बनते हैं। अब यह बिकवाली का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है, जिसका समाधान या जिसके समाधान के तत्व पूँजीपति के नियन्त्रण में नहीं होते हैं। यहाँ एक अनिश्चितता का मामला होता है। चूँकि पूँजीवादी उत्पादन प्रकृति से ही अराजक होता है जिसमें अलग-अलग पूँजीवादी उत्पादक अलग-अलग बिना किसी योजना के मालों का उत्पादन कर रहे होते हैं, इसलिए उसमें पहले ही इस बात का कोई आकलन नहीं किया जाता है कि समाज में किन-किन वस्तुओं और सेवाओं के लिए कितनी प्रभावी माँग मौजूद है। नतीजतन, हर पूँजीपति मुनाफ़े की अपेक्षाओं के आधार पर निवेश करता है और *केवल बाद में ही* यह जान पाता है कि उसका माल कितनी मात्रा में बिकेगा, क्या उसकी आपूर्ति प्रभावी माँग से ज़्यादा होगी, या फिर उसकी आपूर्ति कम पड़ जायेगी। मुद्रा-पूँजी के परिपथ का तीसरा चरण इसी सवाल को हल करता है।

जबतक पूँजीपति की माल-पूँजी बाज़ार में बिक कर मुद्रा-रूप ग्रहण नहीं करती है, तब तक उसकी पूँजी बाज़ार में फँसी होती है और वह अपने पुनरुत्पादन को सुचारू रूप से जारी नहीं रख सकता है। आज के युग में पुनरुत्पादन के कुछेक चक्रों में यह बात नहीं पता चलती है, क्योंकि ऋण की विकसित व्यवस्था के कारण पूँजीपति अपने मालों के पूरी तरह से बिके बिना भी उधार के बूते अपने पुनरुत्पादन को पुराने या बदले हुए स्तर पर जारी रख सकता है। लेकिन अगर सतत् ऐसा होता है और विशेष तौर पर अगर सामाजिक पैमाने पर ऐसा होता है तो फिर पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया गम्भीर रूप से बाधित होती है। बहरहाल, अभी जब कि हम शुद्ध रूप में परिघटना का अध्ययन कर रहे हैं, तो उसे प्रभावित करने वाले बहुत-से कारकों को समीकरण में घुसाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे न तो हम उन कारकों के ठीक-ठीक प्रभाव को समझ पायेंगे और न ही जिस परिघटना का हम अध्ययन कर रहे हैं, उसे उसकी शुद्धता में समझ पायेंगे। अभी लाभप्रदता की स्थितियों, ऋण व्यवस्था की स्थितियों आदि को हमारे आकलन में चर राशियों के तौर पर प्रविष्ट कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए अभी बस यह समझ लेना आवश्यक है कि पूँजीपति के लिए उसके मालों का बिकना यानी बेशी मूल्य से लैस हो चुकी उसकी माल-पूँजी का वापस मुद्रा-रूप ग्रहण करना केन्द्रीय महत्व रखता है और यह मुद्रा-परिपथ के तीसरे चरण का बुनियादी प्रश्न होता है।

संचरण के क्षेत्र की स्थितियाँ पूँजीपति के नियन्त्रण में नहीं होती हैं और वे ही तय करती हैं कि उसकी पूँजी किस हद तक प्रभावी सिद्ध होगी, किस हद तक व फैलेगी या सिकुड़ेगी, पुनरुत्पादन किस स्तर पर जारी होगा। इस पुस्तक के तीसरे खण्ड में हम देखेंगे कि संचरण की ये स्थितियाँ पूँजीपति वर्ग से स्वतन्त्र होती हैं, लेकिन *पूँजीवादी उत्पादन से स्वतन्त्र नहीं होती हैं।* बाज़ार में आपूर्ति और माँग के समीकरण स्वयं पूँजीवादी उत्पादन में संचय की दर से ही निर्धारित होती है। लेकिन अभी बस यह समझ लेना पर्याप्त है कि माल का विपणन यानी संचरण का क्षेत्र उसके नियन्त्रण में नहीं होता है।

मिसाल के तौर पर, अगर हम अपने पुराने उदाहरण का ही इस्तेमाल करें, तो यदि पूँजीपति अपनी माल-पूँजी 10,000 एल.बी. सूत में से केवल 7,440 एल.बी. ही बेच पाता है, तो उसने केवल 372 पाउण्ड प्राप्त किये, जो कि उत्पादन के साधनों पर उसके द्वारा ख़र्च स्थिर पूँजी के बराबर है। यदि उसने 8,440 एल.बी. सूत बेचने में सफलता प्राप्त की तो उसे 422 पाउण्ड प्राप्त हुए जो कि उसकी स्थिर पूँजी और मज़दूरों की श्रमशक्ति को ख़रीदने के लिए व्यय 50 पाउण्ड परिवर्तनशील पूँजी के योग के बराबर होगा; यानी अपने द्वारा निवेशित पूँजी को वापस पाने के लिए पूँजीपति को कम-से-कम 8,440 एल.बी. सूत बेचना ज़रूरी है। दूसरे शब्दों में, अपने कारख़ाने में मज़दूरों द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य को, जो कि उसके मुनाफ़े का आधार है, किसी भी मात्रा में प्राप्त करने के लिए उसे कम-से-कम 8,440 एल.बी. से ज़्यादा माल-पूँजी को बेचना ही होगा। अगर वह समूची माल-पूँजी यानी 10,000 एल.बी. सूत बेचने में कामयाब होता है, तो वह समूचे बेशी मूल्य यानी 78 पाउण्ड को मुद्रा-रूप में प्राप्त करने में सफल होगा। अगर वह 8,400 एल.बी. से ज़्यादा सूत बेच लेता है लेकिन 10,000 एल.बी. से कम सूत बेच पाता है, तो वह बेशी मूल्य के केवल एक हिस्से को ही मुद्रा-रूप में हासिल कर पायेगा। बाकी माल को उसे मूल्य से कम क़ीमत पर बेचना पड़ सकता है और ऐसा भी हो सकता है कि वह माल बिके ही नहीं। ऐसी सूरत में वह समूचे बेशी मूल्य को मुद्रा-रूप में हासिल नहीं कर पायेगा।

ध्यान रखें कि इस स्थिति पर इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता है कि पूँजीपति को मज़दूरों को 50 पाउण्ड के बजाय 64 पाउण्ड देने पर मजबूर होना पड़ता है, क्योंकि मज़दूरों ने मज़दूरी को बढ़ाने के लिए संघर्ष किया। उस सूरत में कुल नये उत्पादित मूल्य यानी 128 पाउण्ड का बँटवारा 50 पाउण्ड मज़दूरी और 78 पाउण्ड बेशी मूल्य के रूप में होने के बजाय 64 पाउण्ड मज़दूरी और 64 पाउण्ड बेशी मूल्य के रूप में होगा और बेशी मूल्य की दर 156 प्रतिशत से घटकर 100 प्रतिशत पर आ जायेगी। लेकिन माल-पूँजी का कुल मूल्य उतना ही होगा। कुल नया मूल्य भी उतना ही होगा, बस मज़दूरी और मुनाफ़े के रूप में उसका बँटवारा बदल जायेगा। *मालों के कुल मूल्य में परिवर्तन तभी हो सकता है जबकि कुल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रम की मात्रा में बदलाव आये।* यानी, या तो उत्पादन के साधनों पर लगने वाली पूँजी मशीनों और कच्चे माल की क़ीमतों के बढ़ने या घटने के कारण बदल जाये, या फिर कुल नया मूल्य जो मज़दूरों के जीवित श्रम द्वारा पैदा हो रहा है, वही काम के घण्टों में घटती या बढ़ती के कारण या फिर श्रम की सघनता के बढ़ने या घटने के कारण घट या बढ़ जाये। यानी, कुल मृत श्रम और कुल जीवित श्रम की मात्रा में परिवर्तन के बिना मालों के कुल मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता है। अगर यह समान रहता है तो माल-पूँजी का कुल मूल्य उतना ही रहेगा और संचरण के क्षेत्र में इसमें कोई परिवर्तन नहीं आने वाला है, चाहे नये उत्पादित मूल्य का मज़दूरों और पूँजीपतियों में विभाजन बदल ही क्यों न जाये।

अब अगर अब तक के विश्लेषण के आधार पर हम मुद्रा-पूँजी के परिपथ को विस्तारित करें तो वह इस प्रकार प्रकट होता है:

$$M - C < {}^{L}_{mp} \cdots P \cdots (C + c) - (M + m)$$

यानी, उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़रने और बेशी मूल्य से लैस होने के बाद हम माल-पूँजी को *अवधारणात्मक तौर पर* दो हिस्सों में बाँट सकते हैं। पहला, माल-पूँजी का वह हिस्सा जो मूलत: निवेशित मुद्रा-पूँजी यानी M और साथ ही उत्पादक-पूँजी P के मूल्य के बराबर है, और मूल्य के रूप में माल-पूँजी का वह हिस्सा जो पहली बार उत्पादन की प्रक्रिया में ही अस्तित्व में आया है, यानी c, जिसका कोई समतुल्य उत्पादन की प्रक्रिया सम्पन्न होने के पहले पूँजी के मूल्य में शामिल नहीं था। नतीजतन, हमारे सामने मौजूद उत्पादित माल-पूँजी भौतिक तौर पर तो एक ही समान मालों का एक समुच्चय है और उसके किसी भी एक हिस्से को दूसरे हिस्से से भौतिक गुण या उपयोगिता की एक वस्तु के तौर पर अलग नहीं किया जा सकता है, लेकिन जब हम पूँजी-मूल्य के संचरित होने और मूल्य-संवर्धित होने के अलग-अलग चरणों का अध्ययन करते हैं, तो हम पाते हैं कि माल-पूँजी का एक हिस्सा मूल्य के तौर पर मूल निवेशित मुद्रा-पूँजी व उत्पादन में जाने वाली उत्पादक-पूँजी के मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि दूसरा हिस्सा उत्पादन की प्रक्रिया में पैदा हुए बेशी मूल्य का प्रतिनिधित्व कर रहा है। जैसा कि ऊपर के समीकरण में हम देख सकते हैं, तीसरे चरण में एक ही प्रक्रिया के घटित होने के अन्तर्गत वास्तव में *अवधारणात्मक तौर पर* दो प्रक्रियाएँ घटित हो रही हैं : पहली, C – M, यानी मूल निवेशित पूँजी का वापस मुद्रा-रूप ग्रहण करना और पूँजीपति के पास वापस आना; और दूसरी, c – m, यानी बेशी मूल्य के रूप में पहली बार अस्तित्व में आये c का मुद्रा-रूप ग्रहण कर पूँजीपति के पास वापस जाना। पहली प्रक्रिया में जो C – M घटित होता हम देख रहे हैं, वह वास्तव में संचरण का दूसरा क़दम है। पहले लगायी गयी मुद्रा-पूँजी M का पहले उत्पादन के साधनों व श्रमशक्ति नामक विशिष्ट उत्पादक मालों का रूप ग्रहण करना और इस प्रकार उत्पादक-पूँजी P का स्वरूप ग्रहण करना, उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़रकर उत्पादित माल C का रूप ग्रहण करना और फिर वापस मुद्रा-रूप ग्रहण कर M के रूप में पूँजीपति के पास वापस जाना, यानी कुल मिलाकर M – C – M। लेकिन माल-रूप में बेशी मूल्य का प्रतिनिधित्व कर रहे c के लिए मुद्रा-रूप में यानी m में तब्दील होना एक पहली बार घटित हो रही प्रक्रिया है, क्योंकि माल-रूप में यह बेशी मूल्य उत्पादन के पहले से मौजूद नहीं था, बल्कि उत्पादन की प्रक्रिया में ही अस्तित्व में आया है। यह मूलत: निवेशित मुद्रा-पूँजी के मूल्य में शामिल नहीं था। इसके लिए अभी दूसरा चरण यानी m – c का घटित होना बाक़ी है, जो तभी होगा जब माल-पूँजी मुद्रा के रूप में वास्तवीकृत होने के बाद पूँजीपति की आय और संचित पूँजी में बँटेगी और संचित पूँजी वापस पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में निवेशित होगी। मार्क्स बताते हैं:

"यहाँ दो बातों पर ग़ौर किये जाने की आवश्यकता है। पहली बात, पूँजी-मूल्य का अपने मूल रूप में अन्तत: रूपान्तरित होना माल-पूँजी का एक प्रकार्य है। दूसरा, इस प्रकार्य में बेशी मूल्य के अपने मूल माल-रूप से मुद्रा-रूप में पहला औपचारिक रूपान्तरण शामिल है। मुद्रा-रूप यहाँ एक दोहरी भूमिका निभाता है; एक ओर यह मुद्रा-रूप में मूलत: निवेशित किये गये एक मूल्य का वापस लौटने वाला रूप है, यानी, मुद्रा मूल्य के उसी रूप में वापस लौटती है जिस रूप में मूल्य की उस मात्रा ने प्रक्रिया की शुरुआत की थी; दूसरी ओर, यह मूल्य की एक मात्रा के रूपान्तरित रूप की भी नुमाइन्दगी करती है जो संचरण में प्रवेश ही मूलत: माल-रूप में करता है। अगर वे माल जिनसे माल-पूँजी निर्मित हुई है अपने मूल्य पर ही बिकते हैं, जैसा कि हमने यहाँ माना है, तो C + c उतने ही मूल्य वाले M + m में रूपान्तरित हो जाती है; इसी आख़िरी रूप में, M + m (422 पाउण्ड + 78 पाउण्ड = 500 पाउण्ड) के रूप में, वास्तवीकृत माल-पूँजी अब पूँजीपति के हाथों में मौजूद होती है। पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य अब मुद्रा के रूप में मौजूद हैं, यानी, सार्वभौमिक समतुल्य के रूप में।" (*वही*, पृ. 126-27, *अनुवाद हमारा*)

पूँजी का परिपथ यहाँ मुद्रा-पूँजी के रूप में ही शुरू होता है और मुद्रा-पूँजी के रूप में ही एक चक्र पूरा करता है। ठीक इसीलिए इसे मुद्रा-पूँजी का परिपथ कहते हैं। इसके पूरा होने के साथ पूँजीपति के हाथ में बेशी मूल्य से संवर्धित हो चुकी पूँजी मुद्रा-रूप में मौजूद होती है और वह अपने पुनरुत्पादन की साधारण या विस्तारित पैमाने पर फिर से शुरुआत कर सकता है। उत्पादित सूत के भौतिक रूप में आप M और m का प्रतिनिधित्व करने वाले हिस्से को अलग नहीं कर सकते। सूत का एक धागा हूबहू सूत के दूसरे धागे के ही समान है। लेकिन माल-पूँजी के बिकने के साथ प्राप्त मुद्रा-पूँजी मुद्रा की कोई भी साधारण मात्रा होने के बावजूद एक मायने में अलग होती है। यहाँ पूँजीपति के लिए M और m मुद्रा की एक ही राशि में निहित होने के बावजूद एक-दूसरे के बरक्स खड़े होते हैं और पूँजीपति को साफ़ नज़र आते हैं। संचरण के फलस्वरूप M और m यानी मूल निवेशित पूँजी-मूल्य और उत्पादन में पैदा बेशी मूल्य मुद्रा-रूप में पूँजीपति के पास आते हैं या नहीं, इससे पूँजीपति के उत्पादन का पूरा भविष्य निर्धारित होता है। M के साथ m पूरी तरह से उसके हाथ में आता है या नहीं, कम-से-कम M पूरी तरह से पुन:प्राप्त होता है या नहीं, यह सब तय करता है कि पूँजीवादी पुनरुत्पादन सुगम व सुचारू रूप से जारी रहेगा या नहीं, वह साधारण या सिकुड़े हुए पैमाने पर जारी रह पायेगा या फिर विस्तारित पैमाने पर जारी हो पायेगा। अक्सर, M और m एक ही गति के साथ और एक ही समय में साथ संचरित नहीं होते। इसलिए उपरोक्त बिन्दु को समझना पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रकिया को सम्पूर्णता में समझने के लिए आवश्यक है।

बिकवाली के बाद प्राप्त मुद्रा-पूँजी यानी M' में M और m पूँजीपति की गणना में एक-दूसरे के बरक्स खड़े होते हैं। ठीक इसी रूप में M पूँजी के रूप में अपने दावे को सिद्ध करता है। पूँजी, यानी मूल्य की एक ऐसी मात्रा जो अपने आपको

(पेज 18 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 17 से आगे)

संवर्धित कर सकती है। यहाँ M' में एक-दूसरे के बरक्स खड़े M और m पूँजी-सम्बन्ध को अभिव्यक्त करते हैं। M मुद्रा-रूप में मूल्य की एक ऐसी मात्रा के रूप में प्रकट होता है, जो m को जन्म देता है, या उसे पैदा करता है और इस रूप में वह पूँजी के रूप में अपने अस्तित्व को सिद्ध करता है। मार्क्स इस बात को ख़ूबसूरत शब्दों में समझाते हैं:

"इसने (यानी 422 पाउण्ड M ने) न सिर्फ़ अपने आपको क़ायम रखा है, बल्कि उस हद तक इसने अपने आपको पूँजी के रूप में वास्तवीकृत किया है, जिस हद तक इसने अपने आपको m (78 पाउण्ड) से विभेदीकृत किया है, जो कि M से M की ही बढ़ोत्तरी, उसी के फल के रूप में सम्बन्धित है, एक ऐसा इज़ाफ़ा जो स्वयं M ने ही पैदा किया है। *इसने अपने आपको पूँजी के रूप में साबित कर दिया है, क्योंकि यह ऐसा मूल्य है जिसने स्वयं मूल्य पैदा किया है।* M' एक पूँजी-सम्बन्ध के रूप में मौजूद है; M अब महज़ मुद्रा के रूप में प्रकट नहीं होता, बल्कि अभिव्यक्त रूप में मुद्रा-पूँजी के रूप में अवस्थित होता है, ऐसे मूल्य के रूप में जिसने अपना मूल्य-संवर्धन कर लिया है; यानी, इस प्रकार इसमें अपने मूल्य को बढ़ाने की और अपने मूल्य से भी ज़्यादा मूल्य पैदा करने का गुण है। M पूँजी के रूप में M' के ही एक दूसरे हिस्से से अपने सम्बन्ध के ज़रिये अवस्थित है, एक ऐसा हिस्सा जिसे स्वयं इसने ही अवस्थित किया है, जैसे कि कारण अपने प्रभाव से जुड़ा होता है, जैसे आधार से परिणाम जुड़ा होता है। *इस प्रकार M' मूल्यों के एक ऐसे योग के रूप में प्रकट होता है जो आन्तरिक तौर पर विभेदीकृत है, एक प्रकार्यात्मक (अवधारणात्मक) आत्म-विभेदीकरण से गुज़रता है, और पूँजी-सम्बन्ध को प्रकट करता है।*" (*वही*, पृ. 128, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

मार्क्स आगे बताते हैं कि मूल पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य के बीच का यह अन्तर यहाँ दो मात्राओं के पूर्णत: परिमाणात्मक अन्तर के रूप में अपने आपको पेश करता है। मूल्य के अलग-अलग हिस्सों के बीच कोई गुणात्मक अन्तर नहीं होता है। 422 पाउण्ड और 78 पाउण्ड के बीच का अन्तर महज़ दो राशियों का अन्तर ही है। जब तक मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया के गुणात्मक और सारभूत चरित्र को न समझा जाय, यह अन्तर हमारे लिये मात्र एक औपचारिक अन्तर रहता है। मुद्रा-पूँजी के परिपथ के तीसरे चरण में उत्पादन की प्रक्रिया के प्रभाव ओझल हो चुके होते हैं और हमारे सामने पहले विपणित होने को तैयार माल-पूँजी मौजूद होती है। तीसरे चरण में हम महज़ माल-पूँजी के, जो कि पहले ही उत्पादन के फलस्वरूप बेशी मूल्य से लैस हो चुकी है, मुद्रा-पूँजी में औपचारिक रूपान्तरण को ही देखते हैं। माल-पूँजी में भी C और c, यानी माल-रूप में मूल पूँजी-मूल्य और माल-रूप में बेशी मूल्य के अन्तर को महज़ एक परिमाणात्मक अन्तर के रूप में ही देखते हैं। लेकिन C + c यानी बेशी मूल्य से लैस माल-पूँजी सीधे उत्पादन की प्रक्रिया का परिणाम होती है और अभी मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया के निशानात का सुराग़ लगाया जा सकता है।

लेकिन इसके विपरीत जब M' के रूप में मुद्रा की एक राशि पूँजीपति में फिर से पूँजी की भूमिका का निर्वाह करने के लिए मौजूद होती है, तो मूल्य-संवर्धित पूँजी के रूप में उसका अस्तित्व छिप चुका होता है। बेशी मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया में पैदा होने के सुराग़ अब ओझल होने लगते हैं। नये सिरे से मुद्रा-पूँजी का परिपथ M' से नहीं शुरू होता, बल्कि M से ही शुरू होता है। यह बात कि परिपथ के नये चक्र में यह M पहले ही मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया से गुज़र चुकी पूँजी है, कोई मायने नहीं रखती है। जब परिपथ का नया चक्र शुरू होता है, तो 500 पाउण्ड निवेशित की जाने वाली मुद्रा-पूँजी की बस किसी भी साधारण मात्रा के ही समान होते हैं। परिपथ M' से नहीं बल्कि M से ही शुरू होता है। केवल विश्लेषण के आधार पर ही हम M' को M और m के योग के तौर पर देख पाते हैं, क्योंकि जब हम माल-पूँजी के विपणन की प्रक्रिया को देखते हैं तो हम पाते हैं कि मूल्य-संवर्धित पूँजी के इन दो हिस्सों के संचरण की प्रक्रिया एक साथ चलते हुए भी विभेदीकृत होती है। अगर c पूर्णत: नहीं बिक पाता तो पूँजीपति बेशी मूल्य को पूर्ण रूप से वास्तवीकृत नहीं कर पाता और इसी के आधार पर पुनरुत्पादन-सम्बन्धी उसके फ़ैसले लिये जाते हैं। अभी हम बेशी मूल्य में से पूँजीपति द्वारा अपने उपभोग के लिए आमदनी के तौर पर निकाले जाने वाले हिस्से पर विचार नहीं कर रहे हैं और आम तौर पर आमदनी के तौर पर बेशी मूल्य से पूँजीपति द्वारा निकाले जाने वाले हिस्से के आकार का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि पूँजीपति बेशी मूल्य के कितने बड़े हिस्से को पूँजी में तब्दील करने का निर्णय लेता है, यानी किस दर से पूँजी संचय करने का निर्णय करता है।

बहरहाल, इतना स्पष्ट है कि M' का यह अतार्किक रूप जिसमें M और m के अन्तर कमोबेश ओझल से हो जाते हैं, C' के मामले में कम प्रकट होता है क्योंकि C' एक पूँजी-मूल्य में उत्पादन की प्रक्रिया द्वारा एक *सारभूत रूपान्तरण* का परिणाम होता है, यानी बेशी मूल्य के पैदा होने का परिणाम होता है और सीधे उत्पादन की प्रक्रिया से निकलता है। जबकि M' बस C' का एक रूप से दूसरे रूप में *औपचारिक रूपान्तरण* है। दोनों ही पूँजी के दो रूप हैं : एक मुद्रा के रूप में और दूसरा माल के रूप में। इन दोनों का फ़र्क केवल रूप का है, अन्तर्वस्तु का नहीं। माल-पूँजी माल होने के कारण पूँजी नहीं होती और न ही मुद्रा-पूँजी मुद्रा होने के कारण पूँजी होती है। माल या मुद्रा बेशी मूल्य के उत्पादन यानी एक सारभूत रूपान्तरण के कारण ही पूँजी बनते हैं। इस प्रकार, माल-पूँजी और मुद्रा-पूँजी, दोनों ही मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया से गुज़र चुके पूँजी-मूल्य की नुमाइन्दगी करते हैं, बस अलग-अलग रूपों में। लेकिन जब हम *मुद्रा-माल (commodity-money)*, यानी उस माल के उत्पादन की बात करते हैं, जो स्वयं मुद्रा की भूमिका निभाता है, यानी सोना या चाँदी, तो मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया से गुज़र चुकी मुद्रा-पूँजी यानी M' का विचारधारात्मक रूप ओझल होने लगता है क्योंकि यहाँ उत्पादित माल को मुद्रा में रूपान्तरण की कोई आवश्यकता नहीं है। उत्पादित माल स्वयं मुद्रा है। इसका सूत्र इस रूप में प्रकट होता है :

$$M - C < {}^{L}_{mp} \cdots P \cdots M' (M + m)$$

यहाँ स्वयं उत्पादित माल है एक ऐसी मात्रा में सोना जिसका मूल्य शुरू में निवेशित मुद्रा-पूँजी यानी M और उसके उत्पादक पूँजी के रूप P के मूल्य से ज़्यादा है और यह उत्पादित सोना ही स्वयं मुद्रा-माल है, यानी वह माल है जो मुद्रा की भूमिका अदा करता है।

(नोट: एल.बी. वज़न की एक इकाई है, जिसे पाउण्ड कहा जाता है, लेकिन चूँकि ब्रिटिश मुद्रा का नाम भी पाउण्ड है, इसलिए हम इसके संक्षिप्त रूप एल.बी. का ही इस्तेमाल किया है। 1 एल.बी. वज़न 0.45 किलोग्राम के बराबर होता है।)

(अगले अंक में : सम्पूर्णता में मुद्रा-पूँजी का परिपथ)

मेहनतकश वर्ग के चेतना की दुनिया में प्रवेश करने का जश्न

"मेहनतकश साथियो!

मई दिवस आ रहा है। वह दिन, जब तमाम देशों के मेहनतकश वर्ग चेतना की दुनिया में प्रवेश करने का जश्न मनाते हैं, इन्सान के हाथों इन्सान के शोषण और दमन के ख़िलापफ़ अपनी संघर्षशील एकजुटता का इज़हार करते हैं, करोड़ों मेहनतकशों को भूख, ग़रीबी और ज़िल्लत की ज़िन्दगी से आज़ाद कराने की प्रतिज्ञा करते हैं। इस महान संघर्ष में दो दुनियाएँ रूबरू खड़ी हैं – पूँजी की दुनिया और मेहनत की दुनिया, शोषण तथा ग़ुलामी की दुनिया।

एक तरफ़ खड़े हैं ख़ून चूसने वाले मुट्ठी भर अमीरो-उमरा, उन्होंने फ़ैक्ट्रियाँ और मिलें, औज़ार और मशीनें हथिया रखी हैं, उन्होंने करोड़ों एकड़ ज़मीन और दौलत के पहाड़ों को अपनी निजी जायदाद बना लिया है, उन्होंने सरकार और फ़ौज को अपना खिदमतगार, लूट-खसोट से इकट्ठा की हुई अपनी दौलत की रखवाली करने वाला वफ़ादार कुत्ता बना लिया है। दूसरी तरफ़ खड़े हैं उनकी लूट के शिकार करोड़ों ग़रीब। वे मेहनत-मज़दूरी के लिए भी उन धन्ना सेठों के सामने हाथ फैलाने पर मजबूर हैं। इनकी मेहनत के बल से ही सारी दौलत पैदा होती है। लेकिन रोटी के एक टुकड़े के लिए उन्हें तमाम उम्र एड़ियाँ रगड़नी पड़ती हैं। काम पाने के लिए भी गिड़गिड़ाना पड़ता है, कमरतोड़ श्रम में अपने ख़ून की आख़िरी बूँद तक झोंक देने के बाद भी गाँव की अँधेरी कोठरियों और शहरों की सड़ती, गन्दी बस्तियों में भूखे पेट ज़िन्दगी गुजारनी पड़ती है।।

लेकिन अब उन ग़रीब मेहनतकशों ने दौलतमन्दों और शोषकों के ख़िलाफ़ जंग का ऐलान कर दिया है। तमाम देशों के मज़दूर श्रम को पैसे की ग़ुलामी, ग़रीबी और अभाव से मुक्त कराने के लिए लड़ रहे हैं जिसमें साझी मेहनत से पैदा हुई दौलत से मुट्ठी भर अमीरों को नहीं बल्कि सब मेहनत करने वालों को फ़ायदा होगा। वे ज़मीन, फ़ैक्ट्रियों, मिलों और मशीनों को तमाम मेहनतकशों की साझी मिल्कियत बनाना चाहते हैं। वे अमीर-ग़रीब के अन्तर को ख़त्म करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि मेहनत का फल मेहनतकश को ही मिले, इन्सानी दिमाग़ की हर उपज, काम करने के तरीक़ों मे आया हर सुधार, मेहनत करने वालों के जीवन स्तर में सुधार लाये, उसके दमन का साधन न बने।

पूँजी के ख़िलाफ़ श्रम के भीषण संघर्ष में सब देशों के मज़दूरों को अनेक क़ुर्बानियाँ देनी पड़ी हैं। बेहतर जीवन और वास्तविक आज़ादी के अधिकार के लिए लड़ते हुए उनके ख़ून के दरिया बहे हैं। जो मज़दूरों के हित में लड़ते हैं उन्हें हुकूमतों के बर्बर अत्याचार झेलने पड़ते हैं, लेकिन इतने ज़ुल्मो-सितम के बावजूद दुनियाभर के मज़दूरों की एकता बढ़ रही है और वे लगातार, क़दम-ब-क़दम सरमायेदार शोषक वर्ग पर सम्पूर्ण विजय की ओर बढ़ रहे हैं।"

(रूसी क्रान्ति के महान नेता लेनिन ने 1904 में मई दिवस के अवसर पर यह पर्चा लिखा था।)

केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने एक बार फिर से की ग़द्दारी!
20 मई की एकदिवसीय देशव्यापी हड़ताल स्थगित!

(पेज 1 से आगे)

कर दे। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें व्यवस्था को बचाने के लिए दूसरी सुरक्षा पंक्ति के तौर पर अपनी भूमिका निभाती हैं। साल दर साल ऐसी रस्मी हडतालों के ज़रिये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें मज़दूरों को सड़कों पर एक दिन के लिए उतरने को मजबूर करती हैं, लेकिन मालिकों और उनकी प्रतिनिधि सरकारों पर दबाव बनाये बिना ही मज़दूर काम पर वापस लौट चुके होते हैं। कई औद्योगिक क्षेत्रों में यह केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें एक दिन की हड़ताल की नौटंकी करती हैं और उसके बाद साल भर वहाँ नज़र तक नहीं आती। इनके साथ ही अर्थवादी व संघाधिपत्यवादी संगठन जो ख़ुद को "इंक़लाबी" और "मज़दूरों का सहयोगी" बताते हैं, इन्हीं ट्रेड यूनियनों की पूँछ पकड़कर एकदिवसीय हड़ताल में शामिल होते हैं और मज़दूरों के आन्दोलन को सिर्फ़ वेतन-भत्ते की लड़ाई तक सीमित कर देते हैं। देश के मज़दूरों को भी इन मज़दूर वर्ग के ग़द्दारों से सावधान रहना होगा। हमें समझना होगा कि अगर हड़ताल अनिश्चितकालीन नहीं होगी यानी जब तक हमारी माँगें नहीं मानी जाती तब तक हड़ताल जारी न रहे, तो मालिक और सरकार को रत्ती भर भी फ़र्क नहीं पड़ने वाला और वह मिलकर मज़दूर विरोधी नीतियों को लागू करते रहेंगे।

केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की ग़द्दारी का इतिहास काफ़ी पुराना है!

भाँति-भाँति के चुनावी वामपन्थी दलों की ट्रेड यूनियन दुकानदारियों में सबसे बड़े साइनबोर्ड सीटू और एटक के हैं जो क्रमश: माकपा और भाकपा से जुड़े हुए हैं। ये पार्टियाँ मज़दूर क्रान्ति के लक्ष्य और रास्ते को तो पचास साल पहले ही छोड़ चुकी हैं और अब संसद और विधानसभाओं में हवाई गोले छोड़ने के अलावा कुछ नहीं करतीं। सीपीआई, सीपीएम और सीपीआई (एम.एल) जैसे संसदीय वामपन्थियों समेत सभी चुनावी पार्टियाँ संसद और विधानसभाओं में हमेशा मज़दूर विरोधी नीतियाँ बनवाने में मदद करती आयी हैं, तो फिर इनसे जुड़ी ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के हक़ों के लिए कैसे लड़ सकती हैं? जब कांग्रेस और भाजपा की सरकारें मज़दूरों के हक़ों को छीनती हैं, तब भारतीय मज़दूर संघ, इण्टक आदि जैसी यूनियनें चुप्पी क्यों साधे रहती हैं? पश्चिम बंगाल में टाटा का कारख़ाना लगाने के लिए ग़रीब मेहनतकशों का क़त्लेआम हुआ, तब सीपीआई व सीपीएम से जुड़ी ट्रेड यूनियनों ने इसके ख़िलाफ़ कोई आवाज़ क्यों नहीं उठायी? जहाँ और जब इन्हें सत्ता में शामिल होने का मौक़ा मिलता है वहाँ ये पूँजीपतियों को मज़दूरों को लूटने की खुली छूट देने में किसी से पीछे नहीं रहतीं। लेकिन अपना वोट बैंक बचाये रखने के लिए इन्हें समाजवाद के नाम का जाप तो करना पड़ता है और नक़ली लाल झण्डा उड़ाकर मज़दूरों को भरमाते रहना पड़ता है, इसलिए बीच-बीच में मज़दूरों की आर्थिक माँगों के लिए कुछ क़वायद करना इनकी मजबूरी होती है। ज़्यादा से ज़्यादा चुनावी पार्टियों से जुड़ी ये ट्रेड यूनियनें इस तरह रस्मी प्रदर्शन या विरोध की नौटंकी ही करती हैं।

1990 में नवउदारवाद और निजीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से केवल दिल्ली राज्य के स्तर पर नहीं बल्कि 24 बार देश के स्तर पर 'भारत बन्द', 'आम हड़ताल', 'प्रतिरोध दिवस' का आह्वान ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें दे चुकी हैं, परन्तु ये अनुष्ठानिक हड़तालें महज़ मज़दूरों के गुस्से के फटने से पहले प्रेशर को कम करने वाले सेफ़्टी वाल्व का काम कर इस व्यवस्था की ही रक्षा करती हैं। तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें इस व्यवस्था की ही रक्षक हैं, जो इस तरह के एकदिवसीय प्रदर्शनों या हड़तालों से व्यवस्था को संजीवनी प्रदान करती हैं।

दूसरी बात यह कि 5 करोड़ संगठित पब्लिक सेक्टर के मज़दूरों की सदस्यता वाली ये यूनियनें इन मज़दूरों के हक़ों को ही सबसे प्रमुखता से उठाती हैं। असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की माँग इनके माँगपत्रक में निचले पायदान पर जगह पाती है और इस क्षेत्र के मज़दूरों का इस्तेमाल महज़ भीड़ जुटाने के लिए किया जाता है। देश की 51 करोड़ खाँटी मज़दूर आबादी में 84 फ़ीसदी आबादी असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की हैं, परन्तु ये न तो उनके मुद्दे उठाती हैं और न ही उनके बीच इनका कोई आधार है। तीसरी बात, अगर ये वाक़ई न्यूनतम वेतन को नयी दर से लागू करवाना चाहती हैं और केन्द्र व राज्य सरकार के मज़दूर विरोधी संशोधनों को सच में वापस करवाने की इच्छुक हैं तो क्या इन्हें इस हड़ताल को अनिश्चितकाल तक नहीं चलाना चाहिए था? यानी कि तब तक जब तक सरकार मज़दूरों से किये अपने वादे पूरे नहीं करती और उनकी माँगों के समक्ष झुक नहीं जाती है।

अब चलो नयी शुरुआत करो! मज़दूर मुक्ति की बात करो!!

इस समय दिल्ली, नोएडा से लेकर ऑटो-सेक्टर और पूरे देश के मज़दूरों की स्थिति नरक सरीखी है। ऑटो-सेक्टर की मारुति, हीरो या होण्डा सरीखी ऑटो फैक्ट्रियाँ हों या मैट्रिक्स सरीखी गारमेण्ट फैक्ट्री हों, बवाना की दाना लाइन की फैक्ट्रियाँ हों या नोएडा में फैली कम्पनियाँ हों, हर जगह मज़दूरों की स्थिति भयंकर है। ठेका, कैज़ुअल या अपरेंटिस हों या दिल्ली की फैक्ट्रियों में बिना पहचान कार्ड, ई.एस.आई-पी.एफ़ के काम करने वाली आबादी हो, सभी जगह मालिकों को मज़दूरों को लूटने की खुली छूट मिली हुई है। आज़ाद हिन्दुस्तान में पहले से ही विशाल अनौपचारिक क्षेत्र मौजूद था, जो नवउदारवाद के दौर में और तेज़ी से फैला है। ठेका प्रथा, कैज़ुअलाइज़ेशन व दिहाड़ीकरण के ज़रिये मज़दूरों का शोषण भीषण से भीषणतम हो रहा है। आज भारत के 93 से 94 प्रतिशत मज़दूर अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्रों के कारख़ानों, वर्कशॉपों, दुकानों, खेतों व अन्य कार्यस्थलों पर काम करते हैं। हालत यह है कि भारत के कुल मज़दूरों के 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा हिस्से को आठ घण्टे का कार्यदिवस हासिल नहीं है। इन मज़दूरों को पी.एफ़, ई.एस.आई, पेंशन, बोनस, स्वैच्छिक ओवरटाइम व ओवरटाइम के डबल रेट से भुगतान आदि जैसे श्रम अधिकार तक प्राप्त नहीं हैं।

अब मोदी सरकार चार लेबर कोड के माध्यम से सभी श्रम क़ानूनों को भी ख़त्म करने करने जा रही है। चार लेबर कोड के ज़रिये श्रम क़ानूनों को दन्त नख विहीन बना दिया जायेगा, जिसके बाद काग़ज़ी तौर पर भी मज़दूरों को लूटने का हक़ इस देश के पूँजीपतियों को मिल जायेगा। मोदी सरकार इन चार श्रम संहिताओं को लागू करने के लिए क़दम-ब-क़दम आगे बढ़ रही है। लोकसभा, राज्यसभा में पारित होने के बाद अभी इन्हें राज्य सरकारों की मुहर लगवाने के लिए भेजा गया है, जिसके बाद यह राष्ट्रपति की मुहर के बाद फैक्ट्रियों में लागू हो जायेंगे। इस दौरान देशभर में करोड़ों की सदस्यता का दम्भ भरने वाली सीटू, एटक, एच.एम.एस, इंटक से लेकर ऐक्टू जैसी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने केवल रस्मी क़वायदें की हैं और सिर्फ़ चिट्ठी-विनती की है यानी एक तरह से मोदी सरकार के सामने इन्हें लागू करने में कोई बाधा उपस्थित नहीं की है। दूसरी तरफ़ इसके ख़िलाफ़ मज़दूरों का आन्दोलन किसी जन उभार में तब्दील न हो इसलिए समय-समय पर रस्मी क़वायदें कर मज़दूरों के आक्रोश को एक दिवसीय हड़ताल तक सीमित कर देती हैं।

दरअसल, दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई लड़ते-लड़ते मज़दूरों की जुझारू चेतना की धार भोथरी कर देने वाले और उन्हें इसी पूँजीवादी व्यवस्था में जीते रहने की शिक्षा देने वाले ट्रेड यूनियनों के ये मौक़ापरस्त, अर्थवादी, सुधारवादी, दलाल, धन्धेबाज़ नेता अब महज़ आर्थिक माँगों के लिए भी दबाव बना पाने की इच्छाशक्ति और ताक़त खो चुके हैं। संसदीय वामपन्थी और उनके सगे भाई ट्रेड यूनियनवादी मौक़ापरस्त शुरू से ही मज़दूर आन्दोलन के भितरघातियों के रूप में पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी-तीसरी सुरक्षा पंक्ति की भूमिका निभाते रहे हैं। आज इनका यह चरित्र इतना नंगा हो चुका है कि मज़दूरों को ये ठग और बरगला नहीं पा रहे हैं। मज़दूरों की भारी असंगठित आबादी के बीच तो इनकी उपस्थिति ही बहुत कम है। विकल्पहीनता में कहीं-कहीं मज़दूर इन बगुला भगतों के चक्कर में पड़ भी जाते हैं, तो जल्दी ही उनकी असलियत पहचानकर दूर भी हो जाते हैं। यह एक अच्छी बात है। लेकिन चिन्ता और चुनौती की बात यह है कि सही नेतृत्व की कमज़ोरियों और बिखराव के कारण मज़दूरों का क्रान्तिकारी आन्दोलन अभी संगठित नहीं हो पा रहा है। किसी विकल्प के अभाव, अपनी चेतना की कमी और संघर्ष के स्पष्ट लक्ष्य की समझ तथा आपस में एका न होने के कारण बँटी हुई मज़दूर आबादी अभी धन्धेबाज़ नेताओं के जाल में फँसी हुई है। इनकी सबसे बड़ी समस्या यह है कि आज पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर मज़दूरों के उन आर्थिक हितों और सीमित राजनीतिक अधिकारों की हिफाज़त करने की भी गुंजाइश लगातार कम होती जा रही है, जिनके लिए आवाज़ उठाने की कमाई माकपा-भाकपा जैसी पार्टियाँ और सीटू-एटक जैसी यूनियनें खाती रही हैं। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों ने अर्थवाद और संशोधनवाद की नक़ली मज़दूर राजनीति की ज़मीन ही खिसका दी है। जो भी पूँजीवादी व्यवस्था में सरकार चलायेगा, उसे पूँजीवादी संकट का समाधान व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर ही ढूँढ़ना होगा। और समाधान के मामले में विकल्प सिकुड़ते जा रहे हैं। इसलिए आज एटक और सीटू जैसी ट्रेड यूनियनों के नेता कुछ हवाई गोले छोड़ने और विरोध के नाम पर अपनी नपुंसकता के प्रदर्शन के सिवा कर भी क्या सकते हैं? मज़दूर वर्ग इन मीरजाफ़रों और जयचन्दों से पीछा छुड़ाकर ही ऐसी लड़ाई में उतर सकता है जो पूँजीवाद के बूढ़े राक्षस को उसकी क़ब्र में धकेलने के बाद ही ख़त्म होगी।

आज असली चुनौती मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली क्रान्तिकारी ताक़तों के सामने है, जो आज भी खण्ड-खण्ड में बिखरी हुई हैं और उनमें आगे बढ़ने के स्पष्ट लक्ष्य और दिशा का अभाव है। उन्हें देश और दुनिया की नयी परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण करने और विचारधारात्मक भटकावों से मुक्त होने के साथ ही मज़दूर आन्दोलन में सही क्रान्तिकारी जनदिशा अपनाकर काम करना होगा। उन्हें विशाल मज़दूर वर्ग के बीच सघन क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार और संगठन काम काम तेज़ करना होगा। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और उसके राजनीतिक एवं आर्थिक आन्दोलनों में भागीदारी की प्रक्रिया मज़दूर वर्ग की सच्ची हिरावल पार्टी के निर्माण की प्रक्रिया को भी तेज़ करेगी। उन्हें भयंकर पूँजीवादी शोषण-उत्पीड़न और अपमान से कसमसा रहे मज़दूर वर्ग को यह समझा देना होगा कि अपने तमाम लाव-लश्कर के बावजूद पूँजीवाद का कवच अभेद्य नहीं है। यदि मज़दूर वर्ग सही राजनीति पर संगठित होकर लड़े और व्यापक मेहनतकश अवाम की अगुवाई करे तो उसे चूर-चूर किया जा सकता है। इसलिए पराजय की मानसिकता से, निराशा से मुक्त होना होगा और नये सिरे से संघर्ष की ठोस तैयारी में लग जाना होगा।

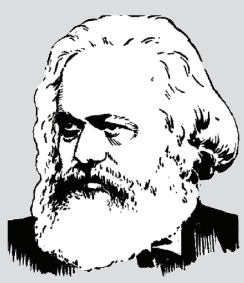

मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक कार्ल मार्क्स के जन्मदिवस (5 मई) के अवसर पर उनके दो उद्धरण

"अपने साहस, दृढ़निश्चय और आत्म-बलिदान के दम पर मज़दूर ही जीत हासिल करने के लिए मुख्य तौर पर ज़िम्मेदार होंगे। निम्न पूँजीपति वर्ग (मध्य वर्ग - अनु.) जब तक सम्भव हो तब तक हिचकिचाएगा और भयभीत, ढुलमुल और निष्क्रिय बना रहेगा; लेकिन जब जीत सुनिश्चित हो जायेगी तो यह उस पर अपना दावा करेगा और मज़दूरों से क़ायदे से पेश आने के लिए कहेगा, और सर्वहारा वर्ग को यह जीत के फलों से वंचित कर देगा। ...बुर्जुआ जनवादियों के शासन में, शुरू से ही, इसके विनाश के बीज छिपे होंगे, और अन्ततोगत्वा सर्वहारा द्वारा इसे प्रतिस्थापित कर दिया जाना आसान बना दिया जायेगा।" **('फ्रांस में वर्ग संघर्ष')**

"इस कम्युनिस्ट चेतना के बड़े पैमाने पर उत्पादन, और ...बड़े पैमाने पर मनुष्यों के रूपान्तरण दोनों के लिए, ...क्रान्ति आवश्यक है; और इसी वजह से, यह क्रान्ति महज़ इसलिए आवश्यक नहीं है क्योंकि शासक वर्ग को किसी अन्य तरीक़े से उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है, बल्कि इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि उसे उखाड़ फेंकने वाला वर्ग केवल क्रान्ति में ही अपने आप को सदियों की तमाम गन्दगी से मुक्त कर सकता है और नये समाज की नींव रखने के लिए तैयार हो सकता है।" **('जर्मन विचारधारा', 1845)**

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

पाठ्यक्रमों में बदलाव और इतिहास का विकृतिकरण करना फ़ासीवादी एजेण्डा है!

● नीशू

हाल ही में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने कक्षा 7 की किताब से मुगल और दिल्ली सल्तनत से सम्बन्धित अध्याय हटा दिये हैं। इसकी जगह पर महाकुम्भ, चार धाम यात्रा, प्राचीन भारतीय राजवंश, 'बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ' जैसी सरकारी योजनाएँ और 'पवित्र भूगोल' जैसे कुछ नये अध्याय शामिल किये गये हैं। स्कूल के पाठ्यक्रम में यह बदलाव "आलोचनात्मक" सोच और ऐतिहासिक प्रासंगिकता को प्राथमिकता देने के नाम पर किया गया है! वास्तव में यह पूरी क़वायद पाठयक्रम से तमाम महत्वपूर्ण हिस्सों को निकाल कर संघी विचारधारा को पोषित करने वाले अध्यायों को जोड़ने की साज़िश के तहत किया जा रहा है। यह समाज का साम्प्रदायिकीकरण करने और नये मस्तिष्कहीन संघी कारकून तैयार करने की दिशा में बढ़ा हुआ क़दम है। जब लोगों को उनके इतिहास के बारे में सही बोध से वंचित किया जाता है, तभी उनके बीच से उन्मादी फ़ासीवादी भीड़ पैदा की जा सकती है और ऐसी भीड़ तैयार करना ही फ़ासीवादी मोदी सरकार का मक़सद है।

पाठ्यक्रम में बदलाव कोई पहली बार नहीं किया गया है। मोदी सरकार के पिछले 11 सालों में शिक्षा तन्त्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के जो भी बचे-खुचे उदाहरण हैं, उन पर व्यवस्थित हमला जारी है। इतिहास गवाह है कि फ़ासिस्टों की सबसे ज़्यादा दुश्मनी जनता की वैज्ञानिक सोच, तार्किकता और इतिहास की सही जानकारी से है। इनका पूरा अस्तित्व ही झूठ, अवैज्ञानिक अतार्किक प्रचार के दम पर टिका होता है। इसलिए फ़ासिस्ट हर उस चीज़ को ख़त्म कर देना चाहते हैं जो उनके अस्तित्व के लिए ख़तरा पैदा करती हो। स्कूल के पाठ्यक्रमों में बदलाव इसी की एक बानगी है। भाजपा और संघ परिवार द्वारा विज्ञान, इतिहास, हिन्दी आदि विषयों को या तो बदला या फिर तोड़ मरोड़कर पेश किया जा रहा है।

पिछले दिनों बच्चों की पढ़ाई का बोझ कम करने के नाम पर, विज्ञान में डार्विन के विकासवाद से लेकर आवर्त सारणी (पीरियॉडिक टेबल), पाइथागोरस प्रमेय को माध्यमिक कक्षाओं से हटा दिया गया। जबकि राजस्थान में आसाराम बापू जैसे बलात्कारी अपराधी बाबा को महान सन्त बताकर पढ़ाया जा रहा है! इतिहास विषय से 2023 में बाबरी मस्ज़िद विध्वंस, 1975 की इमरजेंसी और 2002 के गुजरात दंगों के सन्दर्भ या तो हटा दिये गये या फिर दुबारा से लिखे गये। कोरोना महामारी के दौरान 2022-23 में पहले मुगल और दिल्ली सल्तनत पर आधारित हिस्सों की कटौती की गयी। अब पूरी तरह हटा कर संघियों ने एक तरह से इतिहास के पुनर्लेखन की परम्परा शुरू की है, ताकि इतिहास की पाठ्यपुस्तकों को गल्पकथाओं और मिथकों से भरा जा सके और इतिहास के जो अध्याय फ़ासीवादियों की आँखों में चुभते हैं, उन्हें हटाया जा सके। वास्तव में यह काम इनके फ़ासीवादी एजेण्डे में काफ़ी पहले से था। इसकी शुरुआत 1964 में पीएन ओक के नेतृत्व में राष्ट्रीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान से कर दी थी।

पाठ्यक्रम में इस बार क्या बदलाव हुए हैं, इन्हें जान लेना ज़रूरी है। हालिया हुए बदलाव में सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक एक्सप्लोरिंग सोसाइटी : इण्डिया एण्ड बिऑण्ड (भाग 1) में दिल्ली सल्तनत और मुगल शासक की जगह छात्रों को अब मौर्य, शुंग और सातवाहन शासकों को पढ़ाया जायेगा। यह बात दीगर है इसके साथ ही 'हाऊ द लैण्ड बिकम सेक्रेड' नाम से नया अध्याय जोड़ा गया है जिसमें देश के पवित्र स्थान और तीर्थ यात्राओं का ज़िक्र है जिसमें 12 ज्योतिर्लिंग

चार धाम यात्रा और शक्तिपीठों के बारे में बताया गया है। इनमें से एक अध्याय में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद (प्रयागराज) में इस बार लगे कुम्भ मेले के बारे बताया गया है, जिसमें भाजपाइयों के प्रचार के अनुसार 66 करोड़ लोगों ने भाग लिया! यह अलग बात है कि उसी कुम्भ में आम जनता की सुविधाओं को नज़रन्दाज़ करने से मची भगदड़ में हज़ारों लोग मौत के मुँह चले गये। इस पर चुप्पी साध ली गयी। सबसे अहम बात यह है कि स्कूलों और कॉलेजों का काम सच्चाई के साथ वस्तुगत इतिहास पढ़ाना है। सच्चे इतिहास को जानने वाला देश ही अपना भविष्य सुन्दर बना सकता है। लेकिन फ़ासीवादियों का लक्ष्य इसके बिल्कुल विपरीत है। उन्हें देश को मज़दूरों, मेहनतकशों, आम ग़रीब दलितों व स्त्रियों के लिए यातनागृह बनाना है, जिसमें लोग अडानी-अम्बानी जैसों के लिए दासों की तरह खटें। तो फिर भाजपाई सही इतिहास क्यों बतायेंगे? ये क्यों बतायेंगे कि ख़ुद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू महासभा और तमाम भावी भाजपाई नेताओं का इतिहास देश की आज़ादी के आन्दोलन से ग़द्दारी करने, स्वतन्त्रता सेनानियों के बारे में मुखबिरी करने और अंग्रेज़ों के नाम माफ़ीनामे लिखने का इतिहास है? ये क्यों बतायेंगे कि न तो पुष्यमित्र शुंग का साम्राज्य हिन्दू धर्म की पुनर्स्थापना का बीड़ा उठाये था और न ही मौर्य वंश के राजाओं ने ऐसा कोई लक्ष्य चुना था। सातवाहन शासकों ने भी जितना प्रश्रय ब्राह्मणों को दिया था, उतना ही प्रश्रय बौद्ध धर्म को भी दिया था, जिनके धार्मिक स्थल अमरावती, नासिक, कर्ले और कन्हेरी में इनके शासनकाल में ही पनपे। इन सभी राज्यवंशों के लिए राजनीतिक सवाल यानी सत्ता का सवाल प्रमुख था और इसलिए राजनीतिक हितों के मद्देनज़र इन्होंने अलग-अलग धार्मिक समुदायों के सन्तों आदि को प्रश्रय दिया। लेकिन आज उनकी छवि हिन्दूवादी जैसी बनाने की कोशिश की जा रही है, जबकि उस समय "हिन्दू" शब्द भी मौजूद नहीं था! यह शब्द तो फ़ारसी से आया था जिस भाषा में सिन्धु नदी के पार रहने वालों को 'हिन्दू' कहा गया था! लेकिन भाजपाई और संघी हाफ़पैण्टिये इतिहास को मनगढ़न्त गल्पकथा बनाने में लगे हैं, ताकि देश के लोगों को मूर्ख बनाया जा सके।

इतिहास अब कोई विषय नहीं बल्कि भाजपा का चुनावी घोषणापत्र हो गया है जिसमें छात्रों को 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ', अटल टनल और 'मेक इन इण्डिया' जैसी योजनाओं के बारे में बताया जायेगा । तो यहाँ सवाल यह उठता है कि 'बेटी पढ़ाओ-बेटी बचाओ' जैसे जुमलों के नाम पर वाहवाही बटोरने वाली भाजपा सरकार कुलदीप सिंह सेंगर, ब्रजभूषण शरण सिंह और प्रज्ज्वल रेवन्ना जैसे बलात्कारी भाजपाई नेताओं के बारे में भी कोर्स में पढ़ायेगी? पाठ्यक्रम में यह बदलाव केवल स्कूली शिक्षा तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसे विश्वविद्यालय के स्तर पर भी लागू किया जा रहा है। इसी क्रम में गोरखपुर विश्वविद्यालय के एम.ए. हिन्दी के चौथे समेस्टर के पाठ्यक्रम में लोकप्रिय साहित्य का एक पेपर तैयार किया गया है जिसमें इब्ने सफ़ी, गुलशन नन्दा, वेदप्रकाश शर्मा का 'वर्दी वाला गुण्डा' और हरिवंशराय बच्चन की 'मधुशाला' को शामिल किया गया है। इस लुगदी साहित्य को पढ़कर कोई छात्र कितना साहित्यिक और तार्किक होगा इसका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

एनसीईआरटी ने यह बदलाव नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP) और नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन (NCFSE) 2023 के अनुसार किये हैं। इसमें "भारतीय परम्पराओं और ज्ञान प्रणालियों" पर ज़ोर देने की बात की गयी है। यहाँ पर भी प्रश्न यह है कि क्या छात्रों को लोकायत, सांख्य, न्याय और वैशेषिक जैसे दर्शन पढ़ाये जायेंगे जो तर्क करने की बात करते थे, अन्धविश्वासों को नकारते थे और प्रमाण को सत्य परखने का एकमात्र तरीक़ा मानते थे? क्या उन्हें आजीविकों के बारे में भी पढ़ाया जायेगा, चार्वाक के बारे में भी पढ़ाया जायेगा जो किसी पराभौतिक सत्ता या ईश्वर में यक़ीन नहीं करते थे? ये भी तो प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान और दर्शन हैं! लेकिन हमारे अतीत से भी हमें सभी अन्धविश्वासी, कुढ़मगज़ और प्रतिक्रियावादी विचारों को पढ़ाया जायेगा और उन्हें भी गल्पकथाओं की चाशनी में लपेटकर पेश किया जायेगा, न कि उनके बारे में सच्चा ज्ञान दिया जायेगा।

भारतीय फ़ासिस्टों का इतालवी और जर्मन फ़ासीवादियों से जुड़ाव रहा था, क्या यह भी छात्रों को बताया जायेगा? क्या छात्रों को यह सच बताया जायेगा कि भारतीय फ़ासिस्ट संघ और भाजपा हिटलर और मुसोलिनी के ही विचारधारात्मक वंशज हैं? ये अपने तमाम षड्यन्त्रों, युक्तियों और तौर-तरीक़ों को इतालवी फ़ासीवादियों और जर्मन नाज़ीवादियों से ही सीखते हैं, हालाँकि फ़ासीवादी नीचता में ये अब उन्हें पीछे छोड़ रहे हैं। 1933 में एडॉल्फ हिटलर के सत्ता में आने के बाद , नाज़ियों ने जर्मन समाज का "पुनर्निर्माण" करना शुरू किया। ऐसा करने के लिए नाज़ी तानाशाह सरकार ने जनता पर पूरा नियन्त्रण करने का प्रयास किया। हर संस्थान में नाज़ी विचारधारा का संचार किया गया और प्रमुख पदों पर नाज़ी कर्मियों की घुसपैठ की गयी। स्कूल भी अपवाद नहीं थे। सार्वजनिक ज्ञान और प्रचार मन्त्रालय ने अभिव्यक्ति के लगभग हर रूप पर नियन्त्रण किया - रेडियो, थियेटर, सिनेमा, ललित कला, प्रेस, चर्च और स्कूल। स्कूलों पर नियन्त्रण मार्च 1933 में पहले शैक्षिक आदेश के जारी होने के साथ शुरू हुआ, जिसमें कहा गया था कि "जर्मन संस्कृति का पूरी तरह से ख़्याल रखा जाना चाहिए।" अब इसकी तुलना हम अपने देश के फ़ासीवादियों से करें तो देखते हैं कि यही हमारे देश के तथाकथित भारतीय संस्कृति के ठेकेदार भी कह और कर रहे हैं, हालाँकि इसके लिए हमारे देश के फ़ासीवादी कहीं ज़्यादा चतुराई से काम कर रहे हैं।

हिटलर की नाज़ी सरकार ने युवाओं के दिमाग़ को नियन्त्रित करने के लिए अन्य तरीक़ों के अलावा, स्कूली पाठ्यक्रम में नाज़ी मान्यताओं को शामिल किया था। जीवविज्ञान का एक बड़ा हिस्सा "नस्ल विज्ञान" बन गया, और स्वास्थ्य शिक्षा और शारीरिक प्रशिक्षण नस्ली तनाव से बच नहीं पाये। इसमें छात्रों को श्वेत व आर्य लोगों की महानता और श्रेष्ठता के बारे में बताया गया और सभी काले, भूरे आदि लोगों को हीन बताया गया। इस आधार पर जर्मनी के विश्वविजय के नाज़ी सपने के बीज बच्चों और युवाओं के दिमाग़ में डाले गये और भूगोल भू-राजनीति बन गया , जिसमें पितृभूमि का अध्ययन मौलिक था।

पाठ्यक्रम में इस बदलाव के पीछे संघ और भाजपा सरकार का असल मक़सद हम सभी जानते हैं। जब तक यह सत्ता नहीं थे तब तक यह काम आरएसएस द्वारा संचालित सरस्वती शिशु मन्दिर, विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा संचालित एकल अभियान और इलाक़ों में नियमित लगने वाली शाखाएँ बचपन से बच्चों के दिमाग़ में ज़हर घोलने का काम करती रही हैं। लेकिन अब सत्ता में आने के बाद इन्होंने इसी काम को हर स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों के माध्यम से करने की क़वायद तेज़ कर दी है।

इतिहास राजा रानी के क़िस्से नहीं होता, बल्कि इतिहास का निर्माण जनता करती है। दुनिया में कहीं का इतिहास उठाकर देखें तो यही पता चलता है कि शासक वर्ग की तुलना में उत्पादन करने वाली मेहनतकश आबादी की जीवन स्थितियाँ बदतर ही रही हैं। जब मेहनतकश जनता एकजुट होकर अपने शासक वर्ग के ख़िलाफ़ संघर्ष करती है तब समाज आगे बढ़ता है। अतीत कभी भी भविष्य से बेहतर नहीं होता।

प्राक् इतिहास से लेकर आधुनिक इतिहास का मिथ्याकरण फ़ासीवाद की मुख्य अभिलाक्षणिकताओं में से एक होता है। इसके ज़रिये वह समाज की

(पेज 5 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016